विषय–सूची

ओ३म्

गुरुकुल पत्रिका

(गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालयस्य, मासिक पत्रिका)

चैत्र, वैशाख २०४०		अंक : ३-४
मार्च, अप्रैल : १९८४	वर्ष : ३६	पूर्णांक ३५४-५५

श्रुति-सुधा

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विशुरूपं यदस्य।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥ साम० ५८७ ॥

अन्वय :—इन्द्र: जगत: चर्षणीनां राजा, अधिक्षमा विश्वरूपं यत् [अस्ति तत्] अस्य [एव अस्ति] तत: दाशुषे वसूनि ददाति। उपस्तुतं राध: अर्वाक् चित् चोदत्।

सं० अन्वयार्थ :—इन्द्र संसार का, मनुष्यों का राजा है। इस पृथिवी पर नाना रूपों वाला जो कुछ भी है वह सब भी इसी का ही है। उसी में से दानी को वह नानाविध वैभव देता है। अति प्रशंसनीय धन वह हमारी ओर प्रेरित करे।

अन्वयार्थ :—(इन्द्र: जगत: चर्षणीनां राजा) सर्वविध ऐश्वर्यों का स्वामी, परमेश्वर इस सकल जगत् का और इस में रहने वाले सभी मनुष्यों का राजा है-स्वामी है। इतना ही नहीं (अधिक्षमा विशुरूपं यत्) इस पृथिवी पर नानारूपों वाला जो प्राणिजात है वा जो पदार्थ जात है वह भी सब (अस्य) इस इन्द्र का ही है, या इस सब का भी वही राजा है। (तत: दाशुषे वसूनि ददाति) वह जगत् का स्वामी वह प्रभु अति प्रशंसनीय मनोवांछित अपने धन को भी इधर आत्मसमर्पण करने वाले साधक की ओर प्रेरित करे।

वह इन्द्र ही इस सम्पूर्ण संसार का और इसमें विद्यमान प्राणिसमूह और पदार्थसमूह का स्वामी है, राजा है। वह सर्वविध धन-वैभव दानशील को देता है। अति स्तुत्य वैभव—आन्तरिक दिव्य वैभव भी इस आत्मसमर्पण करने वाले उपासक की ओर ही वह प्रवाहित करना है। □

महापुरुषों के वचन

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

(गीता ६।५)

मनुष्य को अपने ही सहारे अपना उद्धार करना चाहिये और हीनभावना से अपने को बचाना चाहिये।

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ॥
चरित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम् ॥

(वा० रामा०–२।१०९।४)

मनुष्य के चरित्र या बर्ताव से ही पता लग जाता है कि वह कुलीन है या अकुलीन, वीर है या मात्र डींग मारने वाला तथा पवित्र है या अपवित्र।

यः संयमधुरां धत्ते धैर्यमालम्ब्य संयमी ।
स पालयति यत्नेन वाग्वने सत्यपादपम् ॥

(ज्ञानार्णव–पृ० १२१)

जो संयम से रहने वाला व्यक्ति धैर्य का सहारा लेकर संयम की धुरा को धारण करता है, वही वाणी के वन में सत्यरूपी वृक्ष की यत्नपूर्वक रक्षा करता है अर्थात् धैर्य और संयम के बिना मनुष्य सत्य की रक्षा नहीं कर सकता।

न कंचिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम् ।
बालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः ॥

(अर्थशास्त्र–चाणक्य १/१५)

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि वह किसी का अपमान न करे, सबके मत को सुने, एक बालक की भी अच्छी बात को सुनकर उसका उपयोग करे।

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आ मृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥

(मनुस्मृति ४/१३७)

पूर्व की विफलताओं के कारण अपने को हीन समझकर हतोत्साहित नहीं होना चाहिये, प्रत्युत् अभ्युदय के लिए जीवन पर्यन्त परिश्रम करते रहना चाहिए और उसको दुर्लभ नहीं मानना चाहिये।

□□□

महापुरुष चरितम्

स्वामी दर्शनानन्द :

यः ख्यातः सद्दार्शनिकाग्रणीः सन् बभूव शास्त्रार्थमहारथीन्द्रः ।
यद् युक्तिजातं प्रबलं नितान्तं स दर्शनानन्दसरस्वतीड्यः ॥

जो अपने समय के प्रसिद्ध उत्तम दार्शनिकों में अगुआ होकर शास्त्रार्थ महारथियों में श्रेष्ठ बन गये। जिनकी युक्तियाँ बहुत प्रबल होती थीं, वे स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती स्तुति के योग्य हैं।

महात्मा नारायण स्वामी :

परोपकारे सततं प्रसक्तान्, दान्तान् प्रशान्तान् सुगुणैश्च कान्तान् ।
सप्रश्रयं तानिह संस्मरामो, नारायण स्वामी महात्मनो वयम् ॥

परोपकार में निरन्तर तत्पर, जितेन्द्रिय, प्रशान्त अपने गुणों से कान्त, महात्मा नारायण स्वामी का हम आदर पूर्वक स्मरण करते हैं।

महात्मा हंसराज :

योग्यो भृशं किन्तु समाजसेवाव्रतं समादाय चकार कार्यम् ।
आजीवनं साधु महान् मनीषी, श्री हंसराजः किल सोऽभिनन्द्यः ॥

अत्यधिक योग्य होते हुए भी समाज सेवा के कठिन व्रत को लेकर जिसने आजीवन कार्य किया। वह सज्जन, महान् विद्वान् श्री हंसराज निश्चय ही सभी के अभिनन्दन के योग्य हैं।

धर्मवीर लेखराम :

वेदोदितो धर्म इहास्त्यभीष्टः, लोकस्य सर्वस्य हिताय नूनम् ॥
तस्य प्रचारे सततं प्रसक्तः, श्री लेखरामो महनीय आसीत् ।

सम्पूर्ण संसार के कल्याण के लिये निश्चय ही वेद में कहा गया धर्म अभीष्ट है, ऐसा समझकर वेद धर्म के प्रचार में निरन्तर लगे हुए लेखराम जी सबके पूजनीय थे।

(महापुरुषकीर्तनम्—पं० धर्मदेव)

—o—

सम्पादक के नाम पत्र

श्रीमन्नमस्ते ।

११ दिसम्बर, १९८३ को महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी की ओर से स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती एवं राय साहब चौधरी प्रताप सिंह जी ने आर्य समाज, अनारकली, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली में जब मेरा सम्मान किया तो मुझे अन्य सामग्री एवं ग्रन्थों के साथ परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा प्रकाशित "महर्षि दयानन्द निर्वाण शती स्मृति ग्रन्थ" अर्थात् Dayananda Commemoration Volume भी मिला। इसमें मेरा भी लेख है। ग्रन्थ उत्तम बना है। इसके लिये सभी संबद्ध महानुभाव बधाई के पात्र है।

उक्त ग्रन्थ के "हिंदी खण्ड" में पहला लेख श्री दीनानाथ सिंह आर्य का है जो महर्षि के जीवन के अन्तिम दिवस से संबन्धित है। लेख बड़े परिश्रम से लिखा गया है। उन्होंने अपने लेख के अंतिम भाग में लिखा है कि श्री गोपाल राव हरि जी ने अपने ग्रन्थ में कहीं भी जोधपुर की विरोधी प्रवृत्तियों का उल्लेख नहीं किया, न नन्हीं जान का, न नौकर द्वारा चोरी का। लेख के अन्त में श्री आर्य जी लिखते हैं—"जगन्नाथ रसोइये का नाम, दूध के साथ कांच पीसकर दिया जाना और स्वामी जी का जगन्नाथ को रुपया देना तथा देश की सीमा से बाहर जाने की सलाह-ऐसी कथाएं हैं, जो लोक प्रचलित हैं-उनकी पुष्टि करना भी कठिन है और अस्वीकार करना भी।"

महर्षि को विष दिये जाने के विषय में श्री गोपालराव हरि, देवेन्द्र बाबू एवं जोधपुर के राव राजाओं के क्या विचार हैं, मैं इस विवाद में पड़ना नहीं चाहता, पर एक दो तथ्य प्रस्तुत करना चाहता हूँ। महर्षि का निर्वाण अक्तूबर १८८३ में हुआ और कुछ ही मास बाद अगले ही वर्ष १८८४ में मैक्समूलर ने अपने लेख में लिखा है कि उन्हें समाचार पत्रों में से संकेत देखने को मिले हैं कि स्वामी जी की मृत्यु उनके शत्रुओं द्वारा विष देने से हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इंग्लैंड में बैठे लोगों को भारत में ही रहने वालों की अपेक्षा भारत के विषय में अधिक जानकारी थी। इसका कारण भी स्पष्ट है क्योंकि उस समय इंग्लैंड का भारत पर राज्य था। यही नहीं, मैक्समूलर ने अपनी मृत्यु से एक वर्ष पूर्व अर्थात् १८९९ में स्वामी जी पर एक और लेख लिखा था, जिसमें स्वामी जी को जहर देने वाली बात को दुहराया है और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उन्हें बतलाया गया है कि जोधपुर की वेश्याओं के बहकावे पर किसी ब्राह्मण रसोइये द्वारा स्वामी जी को जहर दिया गया और रसोइये ने आत्महत्या कर ली थी। आगे मैक्समूलर महोदय लिखते हैं कि स्वामी जी की सहसा मृत्यु

का यही कारण था, अन्यथा दयानन्द बहुत शक्तिशाली थे और उनमें नेतृत्व करने की क्षमता थी। ये बातें मैक्समूलर ने कहां-कहां लिखी हैं, इसकी पूरी जानकारी निर्वाण शताब्दी पर ही प्रकाशित मेरे ग्रन्थ "World Perspectives on Swami Dayananda Saraswati" में पृष्ठ संख्या १२४ और १२७ पर दी गई है। यह ग्रन्थ Concept ने छापा है और Daystar Publications, B-2/48 A, Lawrence Road, New Delhi-110035. (फोन : ७१२११६१) से भी उपलब्ध है। डॉ० भवानीलाल भारतीय ने भी अपने ग्रन्थ "नवजागरण" के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती (१९८३ पृष्ठ ५२३) में मैक्समूलर के इन लेखों की ओर संकेत किया है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि महर्षि को विष देने वाली बात कल्पित नहीं है, बल्कि उसी समय ज्ञात तथ्यों पर आधारित है।

—डॉ० गंगाराम गर्ग
II/२०, वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर,
हरिद्वार-२४९४०७

दिनांक १५-१२-१९८३

□□□

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

(यजु० ४०।२)

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कर्तव्य कर्मों को करता हुआ हो पूर्ण आयु-पर्यन्त जीने की, अर्थात् अपने को समुन्नत करने की इच्छा करे। उसका कल्याण इसी में है; कर्तव्य कर्म को छोड़कर भागने में नहीं। कर्मबन्धन से बचने का यही उपाय है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह पर मान्य कुलपति द्वारा

स्वागत भाषण

अर्चनीय स्वामी जी, परिद्रष्टा महोदय, कुलाधिपति जी, विशिष्ट अतिथिगण. देवियों, सज्जनों एवं ब्रह्मचारियों !

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ८४ वें दीक्षान्त समारोह के अवसर पर मुझे आपका अभिनन्दन करते हुये अतीव प्रसन्नता हो रही है। स्वामी सत्य प्रकाश जी का मैं अत्यन्त आभारी हूं कि उन्होंने इस दीक्षान्त समारोह में पधारने का हमारा निमन्त्रण स्वीकार किया और अपनी गरिमामयी उपस्थिति से समारोह की शोभा बढ़ायी।

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी के व्यक्तित्व से हम सभी परिचित और प्रभावित हैं। उनका जीवन एक खुली किताब है और हमारे लिये प्रेरणा का एक भारी स्रोत है। आप विज्ञान और वेद दोनों के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आपने १९६७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र के प्रोफेसर पद से अवकाश प्राप्त किया और १९७१ में सन्यास ग्रहण किया। भौतिकी और रसायन शास्त्र में आपके सैकड़ों अनुसंधान पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। आप विज्ञान परिषद् के प्रमुख संचालक रहे हैं। 'अंग्रेजी हिन्दी वैज्ञानिक कोष' तथा 'वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा' आपकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। देश में हिन्दी माध्यम से वैज्ञानिक विषयों पर लिखने वाले वैज्ञानिकों में आप अग्रणी हैं। इसके साथ ही आप पातञ्जल योग और उपनिषदों में पारंगत हैं। आपने ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करके अंग्रेजी भाषा भाषी लोगों में वेद के प्रचार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया हैं। सी० एस० आई० आर० द्वारा प्रकाशित भारत की सम्पदा शृंखला पुस्तकों के आप मुख्य सम्पादक रहे हैं।

आदरणीय स्वामी जी !

आप जैसे मनीषी व्यक्ति को अपने बीच पाकर हम अपने आपको इसलिये भी गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं, क्योंकि आधुनिक ऋषियों की परम्परा का इस संस्थान के संस्थापक ने पुनरावर्तन किया है और आपका गैरिक परिधान उसी अनुपम आध्यात्मिक प्रकाश का प्रेरक प्रतीक है। आज दीक्षा लेने वाले स्नातकों के लिये यह दिन और आपका उपदेश अविस्मरणीय रहेगा।

आपकी उपलब्धियां और प्रखर योग्यता को ध्यान में रखते हुये इस विश्वविद्यालय की शिष्ट परिषद् ने इस वर्ष आपको विद्या-मार्तण्ड की मानद उपाधि से अलंकृत करने का निश्चय किया है।

विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह (१९८३-८४) एवं अन्य कार्यक्रमों की झलकियां



विश्वविद्यालय के दीक्षान्त यज्ञ का दृश्य नवस्नातकों को आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार यज्ञ कराते हुए, साथ में अधिकारीगण ।

विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर अधिकारीगण-



दाएं से-श्री सरदारी लाल वर्मा, आचार्य श्री रामप्रसाद वेदालङ्कार, डॉ० एम० आराम (कुलपति, गांधी रूरल इन्स्टीट्यूट, मदुराई) कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा, डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा), पं० सत्यकाम विद्यालंकार (आचार्य), डा० गंगाराम गर्ग।



कुलपति जी दीक्षान्त समारोह पर स्वागत भाषण देते हुए।



कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी दीक्षान्त समारोह पर नवस्नातकों को सम्बोधित करते हुए

उनकी ओर से हम आपको यह उपाधि प्रदान करते हुये अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।
देवियों एवं सज्जनों !

इस वर्ष के आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार विजेता श्री सत्यकाम विद्यालंकार का भी मैं अभिनन्दन करता हूं। श्री सत्यकाम विद्यालंकार वेदों के निष्णात ज्ञाता हैं और उन्होंने भी ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को गति दी है। आप गुरुकुल के यशस्वी स्नातक हैं और वर्षों से वेद का प्रचार, भाषण, चित्रकला तथा शब्दों के आलेखों द्वारा करते रहे हैं।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि विश्वविद्यालय की कार्यपरिषद् ने आपको इस विश्वविद्यालय में मानद प्रोफेसर के पद पर कार्य करने हेतु आमन्त्रित किया है और आर्य विद्या सभा ने आपको गुरुकुल के आचार्य का पद–भार सौंपा है। आपने अत्यन्त कृपा कर इन दोनों पदों पर कार्य करने की सहमति प्रदान की है। हम आपके प्रति कृतज्ञ हैं।

मान्य पण्डित जी, आपकी उपलब्धियों को देखते हुए विश्वविद्यालय की सीनेट ने आपको 'विद्यामार्तण्ड' की उपाधि से विभूषित करने का निश्चय किया है। उसकी ओर से यह उपाधि प्रदान करते हुए हम अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

इस अवसर पर मैं गुरुकुल कांगड़ी की ओर से और आप सबकी ओर से भारत के पहले अन्तरिक्ष यात्री राकेश शर्मा का भी अभिनन्दन करना चाहूंगा, आर्य जनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि राकेश शर्मा आर्य समाज के प्रसिद्ध उपदेशक पं० लोकनाथ, जो कि 'यज्ञरूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिये' गीत के रचयिता हैं, के पौत्र हैं। मेरी उत्कट इच्छा है कि चाँद पर उतरने वाला पहला भारतीय गुरुकुल का ब्रह्मचारी हो।

इधर जो कुछ पंजाब में हो रहा है। उसके बारे में भी हमें कुछ सोचना है, करना है। एक वक्त था जब हमारा देश 'आसिन्धु' सिन्धु पर्यन्त था और सिन्धु से ही हमने हिन्दू नाम लिया था। लेकिन हमारे देश के चार टुकड़े बने और अब पाँचवाँ टुकड़ा बनाने का षड्यन्त्र रचा जा रहा है। गुरुकुल के गुरुजन और आर्यजनों को सोचना है कि इसका किस प्रकार से प्रतिकार किया जाय तथा राष्ट्र की मूल भूत एकता पर मंडराते हुये साम्प्रदायिक खतरों का कैसे मुकाबला किया जाये।

इस सन्दर्भ में मैं श्री वी० के० आर० वी० राव द्वारा वी० टी० कृष्णामाचारी स्मृति व्याख्यान माला में दिये गये व्याख्यान को दोहराना चाहूंगा जिसमें उन्होंने कहा कि हमें राष्ट्र निर्माण की सर्वांगीण प्रक्रिया में भारतीय तत्त्व चिन्तन और मूल्यों के आधार पर ही विकास का ढांचा स्थिर करना है। भारत में भिन्नता होते हुये भी एक राष्ट्रीयता का स्वरूप विद्यमान है। अतः न केवल

शासन तन्त्र को अपितु स्वयंसेवी संस्थानों को भी इस महान् राष्ट्रीय यज्ञ में इकट्ठे मिलकर कार्य करना है जिससे देश में फैली हुई संकुचित विचार धारा और व्याप्त पाखण्ड का नाश हो, प्राचीन और आधुनिक जीवन मूल्यों का समन्वय हो और राष्ट्र हर दृष्टि से अभ्युदय तथा कल्याण की ओर अग्रसर हो सके।

उपस्थित भद्रजनों !

वार्षिक दीक्षान्त समारोह गत वर्ष की गतिविधियों को भी उपस्थित करने का एक सुखद अवसर होता है।

अपने स्थापना काल से लेकर ८४ वर्षों की सुदीर्घ यात्रा में इस विश्वविद्यालय ने युग की कई करवटें देखीं। आँधी और तूफान के अनेक झटके महसूस किये। लेकिन सुदृढ और अडिग चट्टान के सदृश कुलपिता के आदर्शों से पोषित यह विश्वविद्यालय आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त शिक्षा संस्थान के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है और सम्पूर्ण विश्व की दृष्टि आज गुरुकुल पर केन्द्रित है।

कॉमनवेल्थ विश्वविद्यालयों के बर्मिंघम सम्मेलन में गुरुकुल के कुलपति के रूप में अगस्त १९८३ में मुझे आमन्त्रित किया गया था। इस सम्मेलन में विश्व के प्रमुख शिक्षा शास्त्रियों ने भाग लिया। इसमें मैंने निरन्तर शिक्षा एवं सर्वांगीण ग्राम सुधार में गुरुकुल विश्वविद्यालय की भूमिका पर प्रकाश डाला। मैंने आयरलैण्ड, फ्रांस, हालैंड, पश्चिमी जर्मनी, बेल्जियम आदि देशों के प्रमुख विश्वविद्यालयों का अवलोकन भी किया। मैंने अनुभव किया कि वहाँ के शिक्षा शास्त्री गुरुकुल शिक्षा स्वरूप को समझने और ग्रहण करने में जिज्ञासा तथा रुचि लिये हुये हैं। मैंने अनेक कुलपतियों को गुरुकुल में आकर शिक्षा की भारतीय परम्परा को देखने का निमन्त्रण दिया है।

१९८० के जिला जज सहारनपुर के निर्णय के बाद गुरुकुल में पुनर्निर्माण का युग आरम्भ हुआ। किन्तु गत तीन वर्षों में आशा के विपरीत कतिपय अप्रत्याशित दिशाओं से गुरुकुल की प्रगति में बाधायें डालने के अनेक प्रयत्न किये गये। फिर भी मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि बावजूद इन बाधाओं के मान्य परिद्रष्टा डा॰ सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार और कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी के नेतृत्व में गुरुकुल निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर हुआ है। संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप नियमित रूप से शिक्षा-पटल, कार्य परिषद् एवं शिष्ट परिषदों की बैठकें सम्पन्न हुईं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार तथा उत्तर-प्रदेश सरकार के प्रतिनिधि इन बैठकों में सम्मिलित हुये। उनके सहयोग एवं परामर्श से विश्वविद्यालय को उज्ज्वल स्वरूप प्राप्त हुआ है।

भारतवर्ष विश्वविद्यालय के गुरुजनों और अधिकारियों ने समय—समय पर अनेक शिक्षा सम्मेलनों, परिचर्चाओं एवं संगोष्ठियों में भाग लिया।

५ जून १९८३ को विश्वविद्यालय में पर्यावरण दिवस पर एक विद्वद् संगोष्ठी का आयोजन हुआ। देश के अनेक विद्वानों ने इस संगोष्ठी में भाग लिया। भारत सरकार के पर्यावरण मन्त्रालय के उपमन्त्री माननीय श्री दिग्विजय सिंह इस संगोष्ठी के उद्घाटन के लिये पधारे।
देवियों एवं सज्जनों !

मुझे आपको सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि भारत सरकार के पर्यावरण विभाग ने गंगा के समन्वित अध्ययन की योजना के अन्तर्गत इस विश्वविद्यालय को लगभग १० लाख रुपये का अनुदान देना स्वीकार किया है। इस कार्य हेतु हमें ऋषिकेश से लेकर गढमुक्तेश्वर तक का गंगा का भाग मिला है। डा० विशयशंकर अध्यक्ष, वनस्पति—विज्ञान इस प्रयोजना के निदेशक हैं।

२५ जुलाई १९८३ को विश्वविद्यालय में वृक्षारोपण का कार्यक्रम बड़े भव्य रूप से मनाया गया। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश के मन्त्री श्री शिवनाथ सिंह कुशवाहा, चिपको आन्दोलन के प्रणेता पद्मश्री सुन्दरलाल बहुगुणा, मेरठ मण्डल के आयुक्त श्री बी० के० गोस्वामी, जिलाधीश श्री एल० के गुप्ता ने पर्यावरण सम्बन्धी अपने विचार अभिव्यक्त किये। गत वर्षा ऋतु में विश्वविद्यालय परिसर एवं कांगड़ी ग्राम में हजारों वृक्षों का आरोपण किया गया।

२५ से २७ दिसम्बर तक अखिल भारतीय कृषक समाज ने इस विश्वविद्यालय में डॉ० बलराम जाखड़, अध्यक्ष लोकसभा के नेतृत्व में अपना वार्षिक सम्मेलन आयोजित किया। इस अवसर पर देश भर से हजारों कृषकबन्धु इस विश्वविद्यालय में आये। उन्होंने इसे देखा और इसकी प्रगति की सराहना की।

९-१० मार्च १९८३ को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की छठी पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप देने के लिये गुरुकुल में आयी। इसके सदस्य थे—श्री रमारंजन मुखर्जी, भू०पू० कुलपति वर्दवान विश्वविद्यालय, प्रो० आर० सी० गौड, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, प्रो० एम० एल० रैना, पंजाब विश्वविद्यालय, श्री बी० आर० बवाटरा उप-सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, इस समिति के सचिव थे।

इस सन्दर्भ में जो प्रश्न उभर कर सामने आया वह था कि क्या गुरुकुल की कोई निजी विशेषता है अथवा गुरुकुल भी अन्य विश्वविद्यालयों की तरह ही है जो बी० ए० की परीक्षायें लेते हैं और डिग्रियां बांटते हैं।

इस अवसर पर मैंने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ८० वें दशक का कार्यक्रम उपस्थित करते हुये कहा कि गुरुकुल सामान्य विश्वविद्यालयों की तरह नहीं, अपितु विश्व की समस्याओं के समाधान की दिशा में भी उपयोगी हो सकता है। वह सन्देश है आध्यात्मिक मूल्यों का प्रचार, विज्ञान का प्रसार और पाखण्ड का खण्डन, अर्थात् श्रेयस् और प्रेयस् का संगम। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जानते थे कि देश तभी सशक्त होगा जब सभी देशवासी सशक्त, सबल, हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी, ओजस्वी और विचारवान् होंगे। वह देश की निर्बल असहाय, असमर्थ जनता को बलवान्, स्वावलम्बी तथा समर्थ बनाना चाहते थे। अत: जहां एक ओर उन्होंने समाज सुधार के कार्यक्रम पर बल दिया, वहां व्यक्तिगत सुधार पर भी उन्होंने यथेष्ट बल दिया।

इसी हेतु स्वामी श्रद्धानन्द से आज से ८४ वर्ष पूर्व गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की, ताकि यहां से निकले हुये ओजस्वी स्नातक अच्छे ब्राह्मण, अच्छे वैश्य बनें और देश के उद्धार में अपना योगदान दें, लेकिन जिस पौराणिकता पाखण्ड और पोपलीला के विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने युद्धभेरी बजाई थी वह अभी भी देश में व्याप्त है। अत: उनके कार्यक्रम को गतिमान करने हेतु तथा अज्ञान और रूढ़ियों के इन गढ़ों को मिटाने हेतु व्रत—संकल्प नवयुवक समुदाय की, दयानन्द के वीर सैनिकों की, बहुत आवश्यकता है और उनको तैयार करने का कार्य गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय का है।

इस सन्दर्भ में आचार्य सत्यकाम विद्यालकार ने गुरुकुल को वैदिक संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने की योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी के सम्मुख रखी थी, जिसे उन्होंने बहुत पसन्द किया।

विजिटिंग कमेटी ने हरिद्वार की शैक्षणिक आवश्यकताओं का भी जायजा लिया तथा विश्वविद्यालय की गतिविधियों का गहराई से अध्ययन किया और इसकी कमजोरियों एवं क्षमताओं का मूल्यांकन किया। आशा की जाती है कि उनकी सिफारिशें गुरुकुल के विस्तार में बहुत उपयोगी सिद्ध होगीं।

१९ मार्च, १९८४ को गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस अवसर पर गोवर्धन ज्योति की छठी रश्मि का विमोचन करते हुये महात्मा आर्य भिक्षु ने कहा कि "आचार्यों का परम कर्तव्य है कि वे बालकों में गुणों की वृद्धि करें तथा अवगुणों को दूर करें।'

इन दिनों आर्य समाज गुरुकुल काँगड़ी ने भी अंगडाई ली है। संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर की आर्थिक सहायता से आर्य समाज गुरुकुल काँगड़ी ने स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश'

के दूसरे तीसरे एवं छठे समुल्लास के सरलीकृत एवं संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित किये। इसी प्रकार उन्होंने 'व्यवहार भानु' के सरलीकृत संस्करण का प्रकाशन किया। इन तीनों पत्रिकाओं का प्रकाशन इस आशा से किया गया है कि स्वामी जी के विचार घर-घर तक पहुँचें।

मुझे यह कहते हुए भी प्रसन्नता हो रही है कि पद्मश्री विनयचन्द्र मौदगिल्य, प्राचार्य गन्धर्व महाविद्यालय, नई दिल्ली, जिनकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल में हुई थी, ने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को संगीत शिक्षा की ओर प्रेरित करने हेतु अपनी अमूल्य सेवायें प्रदान की हैं। इस शृंखला में उन्होंने पिछले दिनों तीन दिन तक गुरुकुल में प्रवास किया तथा चुने हुये ब्रह्मचारियों को सस्वर वेदमन्त्र एवं अन्य गीत सिखाये।

मुझे आपको यह सूचना देते हुए हर्ष हो रहा है कि पिछले दिनों इस विश्वविद्यालय में अमेरिकन अध्ययन के अखिल भारतीय संगठन का १८ वाँ वार्षिकोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर उ०प्र० के पर्यटन मन्त्री श्री गुलाब सेहरा ने अपने सन्देश में कहा कि ऐसी संस्थाओं ने देश विदेश में एकात्मकता प्रतिष्ठित करने में लाभदायक भूमिका निभाई है। अवध विश्वविद्यालय के कुलपति श्री मेहरोत्रा ने कहा कि इस प्रकार के सम्मेलनों से गुरुकुल कांगड़ी की छवि निखरेगी। इस सम्मेलन का उद्घाटन हमारे मान्य परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने अपने ओजस्वी भाषण से किया। उन्होंने कहा कि किपलिंग तो कहता था, पूर्व पश्चिम का संगम सर्वथा असम्भव है। मैं भारतीय किपलिंग कहता हूं पूर्व और पश्चिम अभिन्न हैं और सदा ही एक दूसरे से जुड़े रहेंगे।

देवियों तथा सज्जनों !

आप जानते ही हैं कि गुरुकुल का मातृ-ग्राम काँगड़ी ग्राम है। इस विश्वविद्यालय द्वारा इस गाँव को पूर्ण रूप से अंगीकृत कर लिया गया है। २६ दिसम्बर १९८३ को लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ का इस गाँव में पदार्पण हुआ तथा वे इस गाँव की प्रगति से काफी प्रभावित हुये। स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ज्वालापुर ने ग्रामवासियों को कुटीर उद्योग धन्धों के लिए ऋण देने का व्यापक कार्यक्रम शुरू किया है जिससे यहाँ के निवासियों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है।

गत वर्ष श्रद्धानन्द सप्ताह के दौरान डा० बी०डी० जोशी के निर्देशन में पुण्य भूमि में राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत कैम्प लगाया गया, विश्वविद्यालय के ५० छात्रों ने अत्यन्त लगन और निष्ठा से काँगड़ी ग्राम में कार्य किया।

अन्य विशिष्ट अतिथिगण के अलावा माननीय बलराम जाखड, श्री आर० वैंकटनारायण, कृषि उत्पादन आयुक्त उत्तर प्रदेश, श्री दर्शन सिंह जिलाधीश, बिजनौर ने कैम्प का अवलोकन किया। इसका उद्घाटन भारत सरकार के भू०पू० सलाहकार श्री शाह ने किया था।

डा० त्रिलोक चन्द के निर्देशन में गुरुकुल काँगड़ी द्वारा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम के अन्तर्गत ३० प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों का सफलतापूर्वक संचालन किया जा रहा है।

गुरुकुल पुस्तकालय ने भी आशातीत प्रगति की है। गत वर्ष पुस्तकालय में विभिन्न विषयों की लगभग ५,००० पुस्तकें मंगाई गई। इस समय विभिन्न विषयों की ३५० पत्रिकायें नियमित रूप से आ रही हैं। पुस्तकालय में इस वर्ष गुरुकुल से प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य एवं गुरुकुल के स्नातकों के विपुल प्रकाशन को पृथक् रुप से 'गुरुकुल प्रकाशन संग्रह' के नाम से संगृहीत किया गया है। इसके लिये पुस्तकालयाध्यक्ष श्री जगदीश विद्यालंकार धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रो० विनोद चन्द्र सिन्हा के नेतृत्व में गुरुकुल का संग्रहालय राष्ट्रीय ख्याति की ओर अग्रसर हो रहा है। इस सत्र से यहाँ अष्टधातु कक्ष और चित्रकला कक्ष की भी स्थापना की गई है। पंजाब विधान सभा के अध्यक्ष माननीय श्री मेहरोत्रा ने, जो पिछले दिनों गुरुकुल आये थे, गुरुकुल के संग्रहालय हेतु १०,००० रु० विशेष अनुदान के रूप में स्वीकृत किये।
मित्रों !

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि विश्वविद्यालय में शोध तथा प्रकाशन का कार्य आलोच्य वर्ष में उत्साहवर्धक ढंग से बढ़ा है। आपको ज्ञात ही है कि गुरुकुल से नियमित रूप से प्रकाशित होने वाली पाँच पत्रिकाओं के अतिरिक्त ऋषि दयानन्द निर्वाण शताब्दी पर गुरुकुल काँगड़ी ने अपने श्रद्धासुमन प्रस्तुत करते हुये 'ऋषि दयानन्द की साधना और सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। निर्वाण शताब्दी के अवसर पर गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के सौजन्य से डा० गंगा राम गर्ग ने अंग्रेजी में 'वैदिक पर्सपैक्टिव ऑन स्वामी दयानन्द सरस्वती' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस पुस्तक की भूमिका सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्रो० कैनिथ जॉन्स द्वारा लिखी गई।

वेद एवं कला महाविद्यालय के वेद, संस्कृत, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा हिन्दी विभागों में अनुसंधान-कार्य प्रगति पर है। इस वर्ष वेद-विभाग में ५ छात्रों के पंजीकरण किये गये इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि अब तक केवल चार विभागों में ही अनुसंधान कार्य की अनुमति थी इस वर्ष दर्शन-विभाग में भी अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने की अनुमति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रदान कर दी है। तदनुसार दर्शन विभाग में भी ५ छात्र पंजीकृत किये गये हैं। इसके अतिरिक्त अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने हेतु मनोविज्ञान, अंग्रेजी तथा विज्ञान महाविद्यालय के वनस्पति-विज्ञान, जीव-विज्ञान तथा रसायन-विज्ञान आदि विभागों में भी अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से पत्राचार चल रहा है।

विश्वविद्यालय अपने स्थापना काल से ही उच्चतर अध्ययन तथा अनुसंधान कार्य में अग्रणी रहा है। महर्षि दयानन्द को केन्द्र बनाकर शोध के विविध परिदृश्य प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। वैदिक मानवतावाद, वेद वर्णित संस्थायें, दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्य में समाज का स्वरूप, प्राचीन भारत में धर्म निरपेक्षता, जनमत, भारत-कुम्बुज सम्बन्ध, बाली द्वीप में भारतीय संस्कृति का विकास, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में वैदिक परम्परा, सत्यदेव परिव्राजक तथा आर्य समाज और प्रेम चन्द ऐसे कार्य हैं जो विश्वविद्यालयीय शोध कार्य की तुलना में प्रतिबद्ध किन्तु लोकोपयोगी कार्य का दिशाबोध कराते हैं। वैदिक शिक्षा दर्शन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विनियोग करना ही हमारा लक्ष्य है और भावी अनुसंधान कार्य की रूपरेखा भी इसी दिशा में स्थिर की जा रही है

आज की नई पीढ़ी स्वतन्त्रता के ऊंचे महलों में उपलब्ध सुख सुविधाओं की तो आकांक्षा करती हैं और उनके अभाव में उग्र आन्दोलन चलाने की बात भी करती है, पर वह नहीं जानती कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये उनके पूर्वजों ने क्या कुर्बानियां दीं, क्या यातनायें भोगीं ? स्वतन्त्रता के लिए लड़ी गई लड़ाई तथा उसकी बुनियादी विशेषताओं का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से आकलन कर, भारतीय इतिहास की पुनर्रचना के लिए योजनाबद्ध अध्ययन करने की आवश्यकता को ध्यान में रख कर विश्वविद्यालय ने अपनी छठी योजना में लाजपतराय अनुसंधान पीठ प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव अनुदान आयोग के समक्ष रखा। विजिटिंग कमेटी के सदस्यों ने इस प्रस्ताव का हार्दिक अनुमोदन किया है। मुझे विश्वास है कि भारत की स्वतन्त्रता एवं पुनर्जागरण के इतिहास की नवसंरचना में यह पीठ अप्रतिम योगदान करेगी।

विश्वविद्यालयीय संकायों के विद्यार्थियों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की विशेष उपलब्धियों से परिचित कराने के लिए भारतीय विश्वविद्यालयों के विद्वानों के व्याख्यानों का आयोजन किया गया। मगध विश्वविद्यालय, गया के इतिहास के प्रोफेसर डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, जवाहर लाल नेहरू वि० वि० के सेन्ट्रल एशिया स्टेडीज के अध्यक्ष डॉ० रामराहुल, दिल्ली वि० वि० के मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष डॉ० एच० सी० गांगुली, रांची विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉ० आर० एस० श्रीवास्तव तथा मुजफ्फरनगर के प्रोफेसर डॉ०विश्वनाथ मिश्र ने विजिटिंग फैलो के रूप में आकर व्याख्यान दिए। इनके आगमन से वि० वि० की सार्थकता बढ़ी है।

प्राध्यापकों की नियुक्तियों के निमित्त विषय-विशेषज्ञ के रूप में जगन्नाथ वि० वि०, पुरी के कुलपति डॉ० सत्यव्रत शास्त्री, वर्दवान वि० वि० के कुलपति प्रो० रमारंजन मुखर्जी, गुजरात विद्यापीठ के कुलपति डा० रामलाल पारिख तथा कश्मीर वि० बि० के कुलपति श्री वहीद मलिक यहाँ पधारे। उन्होंने वि० वि० की प्रगति को देखकर हार्दिक सन्तोष व्यक्त किया।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के श्री के० एन० सिंह, कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा लाओस, वियतनाम और कम्पूचिया के मान्य राजदूत भी इस वर्ष गुरुकुल पधारे और यहां की प्राचीन गुरु-शिष्य प्रधान प्रणाली को देखकर अभिभूत हो गये।

भारत की भावात्मक एकता की पुष्टि तथा नवनिर्माण की अद्यतन जानकारी के लिए जहां, यहां के विद्यार्थी बम्बई, कन्याकुमारी, रामेश्वरम्, मद्रास, अजमेर, जयपुर, आगरा तथा मथुरा की सरस्वती यात्रा पर गये, वहां अन्तर्विश्वविद्यालय खेल परिषद् की सदस्यता प्राप्त कर हमारे विद्यार्थी खेल-कूद के क्षेत्र में भी उतरे। इस वर्ष अलीगढ़ वि०वि० में आयोजित अन्तर्विश्वविद्यालयीय हाकी प्रतियोगिता में हमारे छात्रों का उल्लेखनीय प्रदर्शन रहा।

विद्यार्थियों की शारीरिक क्षमता की वृद्धि के लिए जिमनेजियम की व्यबस्था को भी सुधारा गया, यद्यपि इस क्षेत्र में बहुत कुछ करना शेष है। इसका उद्घाटन श्री टी० एन० चतुर्वेदी तत्कालीन शिक्षा सचिव, भारत सरकार ने किया।

विश्वविद्यालय के छात्रों को परिसर में ही उचित व्यवसाय मार्ग निर्देशन तथा व्यवसाय जगत् की पूरी जानकारी देने के लिए एक विश्वविद्यालय सेवा योजना एवं मंत्रणा-केन्द्र की स्थापना की गई है, जो व्यवसायोन्मुख शिक्षा के व्यवहारीकरण में यह एक ठोस कदम है और इस दिशा में इस अंचल के छात्रों को आगे बढ़ने का पूर्ण अवसर मिल सकेगा। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदत्त इस योजना के लिए हम हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

शिष्ट परिषद् तथा कार्यपरिषद् में शिक्षा मंत्रालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आगामी तीन वर्षों के लिए मनोनीत सदस्यों डा० एल० पी० सिन्हा, कुलपति हिमाचल विश्वविद्यालय, डा० एम० आराम, कुलपति, गांधी रुरल इन्स्टीट्यूट मदुराई, जस्टिस श्री आई० डी० दुआ, श्री गुरुबख्श सिंह, उप-सचिव, शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार, डा० रामलाल पारीख, कुलपति, गुजरात विद्यापीठ, तथा श्री आर० एस० चितकारा का मैं इस अवसर पर हार्दिक स्वागत करना चाहूंगा। ये अपने क्षेत्र के प्रतिष्ठित विद्वान् हैं और इनके दीर्घ अनुभवों से हमें भरपूर लाभ मिलेगा।

यदि इस अवसर पर मैं कन्या गुरुकुल की उपलब्धियों का जिक्र न करूं तो बात अधूरी ही रहेगी। यहां की आचार्या बहन दमयन्ती कपूर कन्याओं को वेद, वेदांग, व्याकरण. संस्कृत तथा गृह-कलाओं में पारंगत बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं। कन्याओं को अतीत के राष्ट्रीय आदर्शों से प्रेरणा लेकर जीवन संग्राम में विवेक तथा उत्साहपूर्वक चल पड़ने के लिए तैयार करना ही इस संस्था का लक्ष्य है। कन्या गुरुकुल की स्नातिकाओं में ललित कला, उद्योग तथा शिक्षा के क्षेत्र में

नये आयाम स्थापित किये हैं। यहां की छात्रायें चरखा कताई, काव्य तथा वाद-विवाद-प्रतियोगिता, खेल, विज्ञान-प्रतियोगिता तथा गृह-विज्ञान प्रदर्शनी में प्रथम रहती हैं। खेलों में प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर यहां की छात्राओं का चयन हुआ है।

निर्माण कार्यों की श्रृंखला में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त धनराशि से ८ प्रोफेसर-क्वार्टर्स का निर्माण सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा किया जा रहा है। इसका शिलान्यास १ फरवरी १९८४ को कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी के सान्निध्य में हमारे परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने किया।

विश्वविद्यालय विभाग गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली की जीती जागती प्रयोगशाला है। ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर नित्य-क्रिया से निवृत होकर श्री ईश्वर भारद्वाज के नेतृत्व में ब्रह्मचारी वेदमन्त्रों का सस्वर पाठ तथा योगाभ्यास करते हैं। वरिष्ठ ब्रह्मचारियों को प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी द्वारा प्रतिदिन एक वेद-मन्त्र अर्थ सहित कंठस्थ कराया जाता है। ब्रह्मचारियों की नियत वेश-भूषा, भोजन-व्यवस्था तथा आवासीय व्यवस्था में इस वर्ष विशेष सुधार हुआ है। पण्डित सत्यकाम जी के सुदक्ष आचार्यत्व में ब्रह्मचारियों का दल अपने कार्य में निरन्तर अग्रणी होता चलेगा, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

मैं एक बार पुनः गुरुकुल की गत वर्ष की उपलब्धियों के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, उत्तर प्रदेश सरकार, आकाशवाणी नजीबाबाद, विश्वविद्यालय की शिष्टपरिषद्, कार्यपरिषद् तथा शिक्षा पटल के मान्य सदस्यगण के प्रति आभार प्रकट करना चाहूँगा, जिन्होंने समय-समय पर हमें अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया तथा हमारा मार्ग प्रदर्शन किया। इसके साथ ही मैं स्थानीय प्रशासन को भी धन्यवाद देना चाहूँगा, जिन्होंने इस दौरान परिसर में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

मैं इस अवसर पर अपने अध्यापकों, कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों को भी साधुवाद देना चाहूँगा, जिन्होंने मेहनत और लगन से ये सब उपलब्धियां प्राप्त कीं।
मान्यवर स्वामी जी!

इस वर्ष पी-एच० डी० की १, एम० ए० की ६२, एम०एस० सी० की ४२, बी० एस० सी० की ३२ तथा अलंकार की १७ उपाधियां प्रदान की गई हैं।

अब आपसे निवेदन है कि नव-स्नातकों को आशीर्वाद देने की कृपा करें।

☐

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर आर्य जगत् के उद्भट विद्वान् स्वामी श्री सत्य प्रकाश जी सरस्वती का नवस्नातकों को–

दीक्षान्त भाषण–

नव दीक्षिन्त सौम्य युवास्नातक वृन्द !

आपके गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलाधिपति, कुलपति एवं अधिकारियों ने मुझे दीक्षान्त भाषण देने के लिए स्नेह पूर्वक आमंत्रित किया है, इसके लिये मैं आभारी हूं। मैं भी एक विश्वविद्यालय का अन्तेवासी रहा और उसी में १९२५, १९२७ और १९३२ में मैंने तीन उपाधियां पायीं और तीन दीक्षान्त भाषण सुने। मैं भारत की पराधीनता के युग का स्नातक हूं। मेरे समय में देश में इतने विश्व विद्यालय नहीं थे, जितने आज हैं। मेरा विश्वविद्यालय १८८८ के लगभग (१८५७ की क्रांति के ३१ वर्ष बाद) स्थापित हुआ था। १८५८ में पहली शृंखला के तीन विश्वविद्यालय स्थापित हुए–कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के। लगभग ३० वर्ष बाद दो और बने–प्रयाग और लाहौर के। आज विश्वविद्यालय स्तरीय उपाधि देने वाली संस्थायें १०० से ऊपर हैं। आपका विद्यालय २ अन्तेवासियों और एक आचार्य से प्रारम्भ हुआ–हरिश्चन्द्र, इन्द्र और मुंशीराम। मुझे उन दिनों की याद है जब हरिश्चन्द्र और इन्द्र स्नातक हुए थे। मैं नहीं जानता कि उस समय १९१२ के प्रथम दीक्षान्त भाषण में क्या कहा गया था। आपका गुरुकुल देश का गौरव था और आर्य जगत् को उस पर अभिमान था। कहा जाता है कि २ मार्च १९०१ को हरिद्वार में एक विद्यालय का शुभारम्भ हुआ–जिसमें १ आचार्य और विद्यार्थी थे। हरिश्चन्द्र की आयु १३ वर्ष की रही होगी और इन्द्र कुछ और छोटे थे। महर्षि दयानन्द की मृत्यु के दो वर्ष बाद १८८५ में आर्यजगत् ने महर्षि की स्मृति में दयानन्द स्कूलों की शृंखला प्रारम्भ की जिनकी शती धूमधाम से मनाने की तैयारियां प्रारम्भ हो गयी हैं। हंसराज और मुन्शीराम–ये दो व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र में देश के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे। इन दोनों संस्थाओं के प्रारम्भिक युग में पार्थक्य अधिक था। मुन्शीराम जी का गुरुकुल राष्ट्रीय था और हंसराज जी द्वारा प्रेरित दयानन्द विद्यालय भारत की पराधीनता के प्रतीक थे और सरकारी स्कूलों के सामञ्जस्य में थे। १९४७ की स्वतन्त्रता के बाद आज सभी विद्यालय और विश्वविद्यालय राष्ट्रीय और राष्ट्र के गौरव हैं। विद्यालयों के दो ही उद्देश्य हैं–पूर्वार्जित ज्ञान का संरक्षण, और नवीन ज्ञान अर्जन। इसे ही वैदिक परिभाषा में क्रमशः क्षेम और योग कहेंगे। गुरुकुलों से भी हमें यही आशा का है और नवीन पद्धति के विश्वविद्यालयों से भी। पुराने ऋषियों ने परम्परा से ज्ञान के विभिन्न



स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती दीक्षान्त भाषण देते हुए।

क्षेत्रों में हमें जो सामग्री दी, वह भी सुरक्षित रहे और साथ ही साथ अपने स्नातकों से हम यह भी पूछने का अधिकार रखते हैं कि इस ज्ञान सागर में उन्होंने नया क्या दिया। हमारे पुराने ऋषियों ने अपने अपने क्षेत्र में पुराना भी सुरक्षित रखा और नया भी दिया था। गौतम, कपिल, कणाद, यास्क और पाणिनि के ग्रन्थ देखिये, सबने अपने पूर्वजों के ज्ञान को आगे की पीढ़ियों तक बढ़ाया भी और अपना नया भी दिया। मानव योनि की यह विशेषता हैं। पशुओं का ज्ञान श्रुति है, न शास्त्र। मनुष्य से ही यह अपेक्षा की जाती है, कि पुराना भी पढ़े, और आगे उसमें कुछ वृद्धि भी करे, गुरुकुल के नवीन स्नातकों से भी मैं यह कहूंगा। आपके ऊपर ऋषि–ऋण है। आपका पढ़ा हुआ और आपके आचार्यों का पढ़ाया गया तभी तेजस्वी होगा, जब हम यह कह सकेंगे, कि आपने अपने अध्ययन के फलस्वरूप ज्ञान–भण्डार का और पुराने वाङ्मय को, पूर्व बिचार धारा को, कला को, शिल्प को, कौशल को, जनजीवन के प्रवाह को भी कुछ नया दिया है। नवीनता के पर्यावरण में प्राचीनता भी गौरवान्वित होती है और इसी प्रसंग में ऋग्वेद प्रारम्भ में ही **पूर्वेभिः** और **नूतनैः ऋषिभिः**– दोनों प्रकार के ऋषियों की कल्पना की है। ऋषि दयानन्द की परिभाषा में पहले समय के विद्वानों को पूर्व–ऋषि और आप जैसे नवीन अध्येता ब्रह्मचारी और विद्वानों को जो नवीन तर्कों के विशेषज्ञ हों, जिन्होंने अपने अपने क्षेत्रों में नये मार्ग प्रशस्त करने का संकल्प किया हो, वेद प्रतिपादित नूतनऋषि कहा गया है। पूर्व ऋषियों के प्रति समादर की भावना रखना, और नूतन–ऋषियों की बातों को निष्ठा पूर्वक सुनना तथा मानना इस प्रकार की भावना जिस समाज में जाग्रत रहती है, वह समाज उन्नति की ओर अग्रसर रहता है, अन्यथा समाज में रुढ़िवादिता व्याप्त होने लगती है। आप सब स्नातक नूतन–ऋषि हैं और इसलिए मेरे जैसे वयोवृद्ध व्यक्ति द्वारा आप नवस्नातकों का स्वागत, अभिनन्दन और विनम्र अभिवादन।

विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में मेरी दृष्टि में यह अन्तर है कि हम विश्वविद्यालय के प्राचार्यों और विद्यार्थियों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे शास्त्र का विकास करेंगे; किन्तु महा–विद्यालय के विद्यार्थी और आचार्यों का कर्तव्य है, कि वे पढ़कर पूर्वार्जित ज्ञान को जीवित रखेंगे और आगे आने वाली पीढ़ियों को यह ज्ञान सौंप देंगे। आज जो स्नातक शिक्षित होने के अनन्तर दीक्षित हो रहे हैं, उनसे मैं यही कहूँगा, कि जो कुछ आपने गुरुओं के समीप रहकर सीखा है, उसको समाज में जीवित रखें और मुझे आशा है कि आप में से कुछ स्नातक उस शास्त्रीय ज्ञान को प्रशस्त करने में भी उद्यत रहेंगे। मैं पुरानी यज्ञशाला को ज्ञान–विज्ञान के बिकास की वेधशालाएं, अनुसंधान शालाएं और प्रयोगशालाएं मानता हूँ। उन्हीं यज्ञशालाओं में बैठकर प्राचीन ऋषियों ने वेदांग, उपांग और उपवेदों का विकास किया था। महर्षि दयानन्द ने यज्ञ की जो परिभाषा अपने ग्रन्थों में की है, वह आज के स्नातकों को सर्वदा याद रखनी चाहिये। महर्षि यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार करते हैं—

'यज्ञ' उसे कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या, उसके उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्र, जिनसे वायु, वृष्टि, जल, औषधी की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम मानता हूँ। आर्य समाज के विद्वानों ने स्वामी दयानन्द की इस परिभाषा की सर्वदा उपेक्षा की है। आज गायत्री यज्ञ, पारायण यज्ञ, शांति यज्ञ, हमारे विद्वानों को सद् उद्देश्यों से बहुत दूर विचलित कर रहे हैं। हिन्दू वातावरण में और महर्षि दयानन्द द्वारा अनुप्राणित वातावरण में यही तो अन्तर है। हमने यज्ञ को रूढ़ि अर्थों में लेना आरम्भ किया है। जो लोग वैज्ञानिक प्रयोग शालाओं में, शिल्प में, कारखानों में, अनुसन्धान–शालाओं में और चिकित्सा संस्थानों में कार्य कर रहे हैं, हमने उन्हें याज्ञिक समझा ही नहीं। आपके गुरुकुल में तो कम से कम यज्ञ की वास्तविकता परिभाषा का स्वरूप निखारना चाहिए, प्रसन्नता की बात है, कि आपकी गुरुकुल भूमि से कुछ ही दूरी पर रानीपुर में भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स का विशाल उद्योग है, ऋषिकेश में भी उपयोगी कार्य हो रहा है। यह सब यज्ञ हैं। क्या आपने इन यज्ञों के ऋत्विजों का आह्वान, आदर सत्कार किया? आप अपने स्नातकों को इन यज्ञों के प्रति निष्ठावान् बनाएं। नहीं तो आपकी यज्ञों के प्रति श्रद्धा हिन्दुओं की कोटि की अन्धश्रद्धा ही कहलावेगी (वस्तुतः श्रद्धा शब्द का जो यौगिक अर्थ है, उनके साथ अन्ध शब्द का प्रयोग हो ही नहीं सकता)। अभी अजमेर में जो महर्षि निर्वाण शताब्दी मनाई थी, उसमें हमने पहली बार महर्षि द्वारा प्रतिपादित यज्ञ की परिभाषा चरितार्थ की–देश के ८–९ वैज्ञानिकों को और कतिपय अन्य विशेषज्ञों को स्वर्ण पदक से सम्मानित किया था, जिन्होंने अपने अपने क्षेत्रों में कार्य करके भारत को गौरवान्वित किया है। वह समारोह ऋषि से शब्दों में यज्ञ था। यजुर्वेद के अध्याय १८ में प्रथम सत्ताइस मंत्र ऐसे हैं, जिनके अन्त में 'यज्ञेन कल्पताम्' ये दो शब्द बराबर प्रयुक्त हुए हैं। इन दोनों को भाष्य करते समय महर्षि दयानन्द ने लगभग प्रत्येक मंत्र का अर्थ अलग अलग किया है। मैं आज के स्नातकों से कहूँगा कि इस पुण्य–स्थली में यज्ञ द्वारा तुम सबने विद्या प्राप्त की है। आप अपना आगे का जीवन भी यज्ञ द्वारा निर्मित करें। आपका समस्त जीवन यज्ञमय हो। देवहित आपकी आयु अर्पित हो, आपके यज्ञ भी यज्ञ पर आधारित हों—आयुर्यज्ञेन कल्पताम्, यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। आप याज्ञिक बनें। किन्तु जब मैं ऐसा उद्‌बोधन आपको दे रहा हूँ, तो मेरा अभिप्राय यह नहीं है, आप प्रातः से सायं तक काष्ठाग्नि पर स्वाहोच्चार के साथ हव्य द्रव्य की आहुति डालते या डलवाते रहें। स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद के अष्टादश अध्याय के मन्त्रों में यज्ञेन शब्द का प्रसंगानुसार अलग अलग अभिप्राय लिया है। मैं कुछ उदाहरण दूंगा। आप में से कइयों ने आचार्य के चरणों में बैठकर शायद यजुर्वेद पढ़ा हो।

१– पृथिवी, नक्षत्र, द्यौ, दिशा के प्रसंग में–यज्ञेन पृथिवीकाल-विज्ञापकेन (१८)

२– अंशु, उपांशु, मैत्रावरुण, मन्थी, आदि के प्रसंग में-यज्ञेन अग्निपदार्थोपयोगेन (१९)
३– स्रुच, कलश, ग्रावाण, वेदि, बर्हि आदि के सम्बन्ध में-यज्ञेन हवनादिना (२१)
४– अग्नि, धर्म, अंक, सूर्य के प्रसंग में–यज्ञेन संगतिकरण योग्येन परमात्मना (२२)
५– एक, तीन, पांच आदि संख्याओं के प्रसंग में यज्ञेन संगतिकरणेन योगेन दानेन वियोगेन वा, अर्थात् जोड़, गुणाव, घटाना, भाग देना आदि अंकगणित द्वारा (१४)

६– त्र्यवि, दित्यवाट्, त्रिवत्स आदि गाय, भेड़, बकरी आदि के प्रसंग में - यज्ञेन पशुपालन–विधिना (२६), और इसी प्रकार षष्ठवाट्, षष्ठौही, उक्षा आदि के प्रसंग में–यज्ञेन पशु शिक्षाख्येन (२७)

७– व्रीहि, यव, माष, तिल, गोधूम आदि के प्रसंग में–यज्ञेन सर्वान्नप्रदेन परमात्मना (१२)
८– अश्मा, मृत्तिका, हिरण्य, लोह,सीस,त्रपु आदि के प्रसंग में– यज्ञेन संगतिकरणयोग्येन (१३)

स्वामी दयानन्द जब यज्ञ का अर्थ संगतिकरण करते हैं तो उनका अभिप्राय रसायन विद्या, धातु विद्या, शिल्प, भौतिकी आदि से होता है ।

आर्य जगत् में स्वतन्त्रता के बाद सुन्दर यज्ञशालाओं के भवन तैयार करने की परिकल्पना उठी, तो हमने देश-देशान्तर में भव्य और रमणीक यज्ञ शालाएं बना डाली–मन्दिर, मस्जिद और गिरजे भी बहुत बने, परन्तु आर्य समाज की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द के अभिप्राय की एक भी यज्ञशाला नहीं बनी। किन्तु भारत राष्ट्र तो इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। आज हमारा आर्यसमाज कुछ गिर कर हिन्दु बनता जा रहा है; किन्तु यह अच्छा हुआ कि भारत राष्ट्र न तो हिन्दू राष्ट्र बना, न मुस्लिम राष्ट्र। हमारा राष्ट्र अभी तक आर्य (भारतीय) राष्ट्र बना हुआ है। आज हमारे देश में १०० के लगभग विभिन्न कार्यों की राष्ट्रीय प्रयोगशालायें हैं। सैकड़ों कारखाने हैं, चिकित्सा, कृषि, शिल्प और विज्ञान को प्रोत्साहन देने वाली यज्ञशालायें हैं। इन पर हमें गर्व है। ये संस्थान और संस्थायें राष्ट्रीय यज्ञस्थली हैं। किन्तु रुढ़िग्रस्त हिन्दुत्ववादी आर्य समाज आज भी इन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है।

मैं अपने आज के स्नातकों से आग्रह पूर्वक संकेत करूंगा कि आपकी शिक्षा–दीक्षा आर्य जगत् के सर्वश्रेष्ठ शिक्षा–संस्थान में हुई है। इसके लिए आपको बधाई है। आपके कुलपति और कुलाधिपति और अधिकारियों से भी कहूँगा, कि आप अपने अन्तेवासियों को दयानन्द के सपनों को पूरा करने की प्रेरणा दें। इन्हें राष्ट्रवादी बनाएं। ये राष्ट्रीय संस्थानों में यशस्वी स्थान प्राप्त करें।

इस संबंध में एक घटना का उल्लेख करूं। कई वर्षों की बात है, मैं गृहस्थी था। अपनी पत्नी के साथ स्पेन के प्रसिद्ध नगर बार्सिलोना गया वहां मरियम के नाम पर एक गिरजाघर कई दशकों से

बन रहा है। आयोजकों की कल्पना है कि वह संसार का सबसे ऊंचा गिरजाघर होगा। अभी केवल आगे की ऊंची दीवार तैयार हुई है। गिरजे के जिस श्रद्धालु पादरी ने मुझे गिरजा घर घुमाकर दिखाया, उसने वेदना भरे भावुक शब्दों में कहा—आज लोग यूनिवर्सिटियों को तो धन देते हैं, किन्तु भगवान् के नाम पर बनने वाले गिरजों के लिये नहीं। यही तो ईसाईयत है, मुसलमान भी ऐसा ही समझता है, अधोगति प्राप्त हिन्दु की भी यही मनोवृति है और आर्यसमाज का व्यक्ति भी इसी मनोवृति में साथ दे रहा है। यह सम्प्रदाय वादिता है आर्य समाज को इसी से बचाना है। स्वामी दयानन्द इसी मनोवृति से हमें बचाना चाहते थे। वैदिक धर्म यथार्थ जीवन का है, यज्ञमय जीवन का निर्माण वेद की शिक्षा है। उन्नीसवें शतक में वेद के परमोद्धारक ऋषि दयानन्द एकमात्र ऐसे धर्माचार्य थे जिन्होंने यूरोप में विकसित ज्ञान विज्ञान एवं नये शिल्प का स्वागत किया। आज का यूरोपीय या अमरीकी विद्वान् बाइबिल की दुहाई नहीं देता। उसका ज्ञान-विज्ञान मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए है। ईसाइयों ने वैज्ञानिकों का विरोध किया, मुसलमानों ने भी विरोध किया। पौराणिक हठाग्राहियों ने भी विरोध किया। हममें से भी कुछ रूढ़िवादी हिन्दू आर्य समाजियों ने भौतिकतावाद की गन्ध विज्ञान और शिल्प में पायी, पर विज्ञान के चरण आगे बढ़ते गये। वेद, वेदांग, उपवेद सबको मिलाकर वर्तमान नाम विज्ञान है। विज्ञान ही मानव मात्र का समान धर्म है। विज्ञान प्रतिपादित—अपौरुषेयत्व में निष्ठा रखना ही सच्ची आस्तिकता है और इसी अपौरुषेयत्व के प्रति नतमस्तक होना मनुष्य का सहज स्वाभाविक धर्म है। अपौरुषेय सृष्टि में विराट् पुरुष का दर्शन करना और इस पुरुष के साक्षात्कार से व्यक्ति और समाज को शाश्वत नैतिकतत्त्व की ओर अग्रसर करना मनुष्य का स्वाभाविक सहज धर्म है। हम अपने विगत मध्यकालीन इतिहास में हिन्दू गणित, ग्रीक ज्योतिष, अरब की रसायन-इन संकुचित भावनाओं के शब्दों का प्रयोग करते थे; किन्तु आज मानव मात्र का एक गणित है, एक रसायन है, एक शिल्प शास्त्र है। ऋषि दयानन्द ने इसी प्रकार की एक कल्पना तथाकथित धर्म के क्षेत्र में की थी। वे समस्त मानव को एक धर्म मंच पर, एक आस्तिकता पर और एक नैतिकता पर लाना चाहते थे। आपके गुरुकुल के स्नातकों से भी इस दिशा में कार्य करने की पूरी आशा हमें थी। हम कभी-कभी आपको ही लक्ष्य करके आवेश में खुशियों के साथ गाया करते थे कि गुरुकुल का ब्रह्मचारी अरब देश में वेद-घोष ले जावेगा, भारत से दूर वेद का प्रचार करेगा। इस सब का एक अर्थ था कि राष्ट्र या देश की, जातपांत की, सम्प्रदायों की सीमायें लांघ कर एक मानवता को हमारा स्नातक प्रश्रय देगा, सभी देशों के अन्धविश्वासों और अज्ञानों को दूर करेगा।

हम २२-२४ वर्ष के वमु ब्रह्मचारी से बहुत आशा नहीं करते। आप सब स्नातक जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। आप वैवाहिक गृहस्थ जीवन में रुद्र और आदित्य ब्रह्मचारी बनने की चेष्टा करें। ज्ञान के विस्तारक का नाम ब्रह्मचारी है। ब्रह्म और वेद शब्द समानार्थक हैं। सृष्टि ज्ञान का

नाम ही विद्या है। इसके दो भेद हैं—परा और अपरा। मूर्त सम्बन्धी ज्ञान सृष्टि का नाम अपराविद्या है। अपराविद्या ईश्वर में निष्ठा उत्पन्न करती है, किन्तु पराविद्या सृष्टि से हमें ऊपर उठाकर सृष्टि रचयिता तक ले जाती है। अमूर्त सृष्टि का ज्ञान पराविद्या है। इस पराविद्या के पांच अध्याय हैं। पांचों के विषय अमूर्त हैं—पहले अध्ययन का विषय इन्द्रियाँ हैं, दूसरे का प्राण, तीसरे का मानस क्षेत्र या अन्तःकरण, चौथे का जीवात्मा और पांचवें का विराट् पुरुष या ब्रह्म। ये पराविद्या अध्ययन के शीर्षक हैं। उपनिषदों में इसी विद्या का उल्लेख है। ये पांचों तत्त्व निराकार हैं। भौतिक या रसायन शास्त्र के क्षेत्र से बाहर इनका क्षेत्र है। इन क्षेत्रों में न्यूटन का सिद्धान्त नहीं लगेगा, न आइन्स्टीइन का। इनका विषय काल्पनिक नहीं है, यथार्थ है। इन पांच की सहायता के बिना कोई ज्ञान अर्जित नहीं हो सकता। इनके तत्त्व दर्शन के प्रति कोई उपेक्षा की भावना नहीं रख सकता। वेद का अध्ययन इस दिशा में भी आपका मार्ग प्रशस्त करेगा। आप अपनी ज्ञानपिपासा को बढ़ाते जायें। आपका गृहस्थ धर्म इस जीवन में बाधा नहीं डालेगा। ऋषियों की भी पत्नियां थीं। ऋषि स्वयं भी ऋषि थे और उनमें से कतिपय की सन्तानें भी ऋषि थीं। कुछ ऋषि-पत्नी भी थी, और ऋषिकायें भी थीं। सर विलियम ब्रैग नोबुल पुरस्कार विजेता हुए और उसका पुत्र ब्रैग (जूनियर) भी साथ ही साथ इस पुरस्कार में उसका साझी हुआ। सर जे० जे० थॉमसन ने नोबुल पुरस्कार पाया और उसके पुत्र जी० पी० थॉमसन ने भी। मेडम क्यूरी ने अपने पति पीरे क्यूरी के साथ भौतिकी के क्षेत्र में नोबुल पुरुस्कार पाया और दुबारा उसकी पत्नी क्यूरी ने रसायन के क्षेत्र में यही पुरस्कार पाया। क्यूरी-परिवार की पुत्री आइरीन क्यूरी और उसके दामाद जोलियों ने भी साथ-साथ नोबुल पुरस्कार पाया। इस अर्थ में मैं आपसे कह रहा हूँ कि गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होकर भी आप ऋषित्व प्राप्त कर सकते हैं। आज आप वसु हैं। मेरी आकांक्षा है कि आपका ब्रह्मचर्य, आपका बेद प्रेम आगे भी बढ़े, जीवन भर आपका वेदाध्ययन बना रहे, गृहस्थ रहकर भी आप रुद्र ब्रह्मचारी बनें तथा आपका पढ़ा-लिखा तेजोवान् बने। अभी तो आपने ज्ञान का 'अ, इ, उ, ण्' सीखा है, श ष स र, हल् तक पहुँचते पहुँचते कई जीवन लगेंगे। ज्ञान की कोई सीमा नहीं। परमात्मा की थाह नहीं, परमात्मा की रची सृष्टि की भी थाह नहीं। परमात्मा अज्ञेय है और उसकी रचना का प्रत्येक कण भी अज्ञेय है। अज्ञेय से अज्ञेय को समझने की पात्रता केवल ज्ञानियों में है। अज्ञानी अपने तुच्छ ज्ञान में ही अपनी सर्वज्ञता समझता है। आदित्य ब्रह्मचारी ही यह जानता है कि जो कुछ उसने जाना, वह कितना कम है, शून्य के बराबर। केनोपनिषद् का ऋषि, सुकरात ऐसा तत्त्ववेत्ता, न्यूटन ऐसा वैज्ञानिक ही इस सत्य के आस्वादन का अधिकारी था।

आप सम्भवतया समझते हों, कि गुरुकुल या आचार्य—कुल की परम्परा आपकी ही संस्था में है। उपनिषदों में गुरु-शिष्यपरम्परा की कतिपय नामावलियां हैं। सुकरात, प्लेटो और अस्तूर की

परम्परा प्रसिद्ध है। विज्ञान के क्षेत्र में, यूरोप के विश्वविद्यालयों में विज्ञान के क्षेत्र में यह परम्परा तीन सौ वर्षों की है। हममें प्रत्येक व्यक्ति जिसने विज्ञान के क्षेत्र में कुछ भी यशस्वी काम किया है, अपने गुरु के नाम पर गौरवान्वित होता है। मेरे गुरु अभी जीवित हैं, ९३ वर्ष की आयु के। मैं और मेरे गुरु भाई आज तक भी (८० वर्ष की आयु में भी) उनकी आंख से आंख मिलाकर बातचीत करने की उद्दण्डता नहीं करते उनके भी गुरु थे, उनके समय में गुरु की भी यही स्थिति थी। मैं अपनी वंशावली बनाऊं तो २००-६०० वर्ष पहले के जगत्-प्रसिद्ध जर्मन रसायन से अपना नाता जोड़ सकता हूं। पर यह गुरु-शिष्य सम्बन्ध प्रथम स्नातक उपाधि के समय स्थापित नहीं होता। जिस गुरु ने अनुसंधान और उच्च अध्ययन के क्षेत्र में हाथ पकड़ कर कुछ सिखाया, वह अन्तिम गुरु हमारा गुरु है। मेरा एक गुरु और अनेक शिष्य। मेरे एक माता पिता उनके पुत्र। गुरु और शिष्य में इतना गहरा सम्बन्ध इन गुरुकुलों में हुआ है, कि गुरु अपने शिष्य को न केवल अपने ज्ञान क्षेत्र में आलोक देता है वह उसके मानों पूरे जीवन का उत्तर दायित्व लेता है कहां नौकरी लगे, कहां आगे के कार्य के लिए सुविधायें प्राप्त हों और कभी-कभी कहां शादी विवाह हो, इन सबकी उसे चिन्ता है। मालूम नहीं कि आपके गुरुकुल में यह परम्परा कहां तक स्थापित हुई है पहले गुरु के गौरव से शिष्य गौरवान्वित होता है और बाद को शिष्य के गौरव से गुरु भी अपने को यशस्वी समझता है। कभी किसी बात में गुरु की अपकीर्ति हुई, तो शिष्य को उस अपकीर्ति का परिणाम भी भोगना पड़ता है।

विगत ८० वर्षों में आपके गुरुकुल ने शिक्षा और आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के संबंध में अच्छी सेवा की थी, आपके अनेक स्नातकों के विद्यानुराग से हम सभी परिचित हैं। हिन्दी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में इन स्नातकों ने अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त की। दिल्ली नगरी में १००, २०० आप के स्नातक अच्छा काम कर रहे हैं। किसी एक का नाम नहीं लेना चाहता। देश देशान्तर में मिशनरी का काम भी इन्होंने अच्छा किया। आज के स्नातकों को अपने इन बड़े गुरु भाइयों के चरणों पर चलने का हौंसला बढाना चाहिए। नौकरियां हम बड़े-बड़े विश्वविद्यालय-स्नातकों को भी नहीं दे पाते, पुनः आपको भी हम आश्वास्न नहीं कर सकते। जब कभी मैं आपके गुरुकुल के पुराने स्नातकों के सम्पर्क में आया हूँ। उनमें एक विशेषता पायी है, वह है आत्मविश्वास की। यह आत्मविश्वास उन्हें नित्य नूतन संघर्षों के लिये साहस और सामर्थ्य देता है आपके स्नातक यशस्वी हुए हैं और पी.एच.डी. एम.ए. आचार्य या शास्त्री की उपाधियाँ ले लेने में इन्हें कोई कठिनाई मालूम नहीं होती। वाद प्रतिवाद प्रतियोगिता में मैं इन स्नातकों की कुशलता प्रायः विश्वविद्यालय में भी देख चुका हूं।

मैं न तो स्नातकों को उपदेश देने का साहस करूंगा और न अधिकारियों को सुझाव। पर कुछ बातें अवश्य कहूँगा। तैत्तरीय उपनिषद् के उद्बोधन से उत्तम और उद्बोधन हो ही क्या सकता

है ? स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रीय वातावरण में सभी भारतीय विश्वविद्यालयों ने पूर्णतया या अंशतः इसे अपना लिया है। यह उद्‌बोधन किसी सम्प्रदाय की बपौती नहीं हैं। यह उस समय का है जब मानवता संकीर्ण सम्प्रदायों में बंटी थी न हिन्दू था न बौद्ध, न ईसाई और न मुसलमान।

आज युग विशेषज्ञता का है। आपके विश्वविद्यालय महाविद्यालय या गुरुकुल की कुछ विशेषता होनी ही चाहिये। प्रत्येक विश्वविद्यालय अपने पाठ्यक्रम, पठन-पाठन पद्धति आदि विवरणों में स्वतन्त्र है (सीमा या बाधा केवल अर्थ तन्त्र की है, अनुदानों की है) आप पूर्ण स्वतन्त्रता पूर्वक अपने संस्थान की विशेषता का विकास करें। ऊंचे स्तर पर पहुँच कर कोई भी शिक्षा संस्थान सभी विषयों के अध्ययन का भार नहीं ले सकता। मेरा सुझाव है, कि अन्य संस्थानों का आप न तो अनुकरण करें और न उनसे प्रतियोगिता। आप अपने लिये सीमित क्षेत्र का वरण करें। स्मरण रक्खें कि विज्ञान विषयक शोध संस्थान आप नहीं चला सकते। आज यह क्षेत्र इतना व्ययसाध्य है कि इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के पुराने विश्वविद्यालय भी अपने को इस कार्य के लिए दरिद्र पा रहे हैं।

आप स्नातक कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाने की आतुरता न दिखावें। आप अपनी पद्धति के गुरुकुलों से देश की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या के शिक्षण की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते।

आप अपने गुरुकुलों में ऐसे स्नातक तैयार करें, जो वैदिक वाङ्मय के ऊंचे विद्वान् हों। अष्टाध्यायी, निरुक्त, महाभाष्य के महाविद्वान् हों इन्हें आप भाषाशास्त्र के विद्वान् बनायें। इस क्षेत्र में काम करने के लिए तपस्या करनी पड़ेगी। एकाध आचार्य और दो चार शिष्य लैटिन, ग्रीक और प्राचीन भाषाओं के विशेषज्ञ बनें और भारत के इतिहास के मर्मज्ञ हों। चीन की पुरानी संस्कृति का ये अध्ययन करें और धीरे-धीरे इस क्षेत्र को विकसित करें। आपका संग्रहालय और पुस्तकालय इन सीमित क्षेत्रों में सम्पन्न हो।

आपके प्राच्य-विभागीय छात्रों को भी संसार की गति विधि से परिचय होना चाहिए। पाठ्यक्रम से बाहर इनके लिये कुछ विशेष व्याख्यानों का प्रबंध करना होगा। चुने हुए कुछ आचार्यों और कुछ शिष्यों को ऐसे कामों के लिए आपके अधिकारियों को प्रोत्साहन देना होगा।

आर्य समाज के प्रति भी आप के गुरुकुल का एक कर्त्तव्य है। मैं आपसे पुरोहित तैयार करने के लिए नहीं कहता। निष्ठावान् तपस्वी उच्चस्तरीय मिशनरी आपको तैयार करने होंगे। देश के अनेक प्राञ्चलों में आपके स्नातक काम करने का अवसर प्राप्त करें, आर्य समाज की संस्थायें इनका भरणपोषण कर निकटवर्ती एवं दूरस्थ देशों में इन्हें भेजें। ये सेवा-व्रती अपने कार्य के योग्य आपके

माध्यम से शिक्षा–दीक्षा प्राप्त करें और फिर कार्यरत हों, तो आर्य जगत् को भी गुरुकुल पर भरोसा होगा।

बहुत दिनों से मेरी कल्पना रही है कि उच्चस्तरीय अनुसन्धान या शोधपत्रिका आर्यजगत् की भी होनी चाहिये। होशियारपुर से एक पत्रिका निकलती है। आपके गुरुकुल से वैदिक मैगजीन निकालता था, एक वैदिक पाथ निकलता है। ये पत्रिकायें आज की दृष्टि से स्तरीय या मानक नहीं हैं। यदि इन पत्रिकाओं का जीवन क्षणिक है, तो ये यशस्वी नहीं हो सकती। मैं स्वयं प्रयाग के विज्ञान परिषद् से विज्ञान शोध सम्बन्धी एक पत्रिका ('विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका') लगभग २७ वर्ष से निकाल रहा हूँ–यह हिन्दी भाषा की एक मात्र अधिकृत शोध पत्रिका है। यदि गुरुकुल को ऐसी पत्रिका निकालनी है। तो गुरुकुल के पास कम से कम ५ लाख रुपये की एक स्थायी निधि होनी चाहिये। इतनी धनराशि से पचास– साठ हजार रुपया वार्षिक ब्याज आवेगा। तब आश्वस्त होकर उसके ब्याज से त्रैमासिक उच्चस्तरीय पत्रिका निकाली जा सकेगी। आज अनेक विश्व–विद्यालयों ने दयानन्द पीठ की स्थापना की है। इनकी संख्या बढ़ती जायेगी। बिना स्तरीय शोध पत्रिका के इन पीठों का काम भी अधूरा रहेगा। क्या आर्यसमाज के क्षेत्र में गुरुकुलों में निष्ठा रखने वाले ५–१० धनी मानी ऐसे व्यक्ति नहीं मिल सकते जो इस काम के लिए एक–एक लाख रुपया दे दें ? शोध संस्थान खोलने की बात मैंने कलकत्ता में भी सुनी, बम्बई में भी, दिल्ली में भी अजमेर में भी। शोध संस्थान का नाम तो लोगों ने सुना है, किन्तु शोध कार्य के लिये शोधकर्ता को जो शोध स्वतन्त्रता चाहिये, उसे कोई देने को तैयार नहीं है। हमारा समाज भी रूढ़ियों से बंधा हुआ है। शोधकर्ता अपने क्षेत्र में कल्पना की मुक्त उड़ान लेता है। दूसरों को भी उसकी प्रत्यालोचना करने का अधिकार है, पर विचारों के स्वातंत्र्य और उनके प्रकाशन में कोई बाधा नहीं डाल सकता। आपका गुरुकुल संस्थान इस कार्य को उदारता से प्रारम्भ करे तो बहुत अच्छा होगा। आप नहीं करेंगे तो कोई करेगा ही। सम्भवतया यूनिवर्सिटो वालों को करना पड़े। गुरुकुलों और यूनिवर्सिटियों में अब निकट का सम्पर्क बढ़ाना चाहिए।

स्वतन्त्रता के बाद हमारे सम्मुख विगत कई वर्षों से दुःखद कहानियाँ भी आयीं। उत्तर भारत में यह विषाक्तता तेजी से फैली। हमारी समस्त शिक्षा - संस्थायें इसके कलुषित प्रभाव से ग्रस्त हो गयीं। अभी यह प्रभाव मिटा नहीं है। विद्यार्थियों में यह विष ऐसा फैला कि उनके लिए अभि–शाप बन गया। इसमें सबसे अधिक हानि युवकों और छात्रों की हुई। ये संयम खो बैठे, दूसरों ने अपने स्वार्थ के लिए उन्हें मूर्ख बनाया। आज गुरुकुल भी उस प्रभाव से बच न पाया। मैं अनैतिक तत्त्वों की बात नहीं करना चाहता, जिन्होंने यह स्थिति पैदा कर दी गुरुकुल को प्रतिष्ठा की हानि हुई है, और विश्वविद्यालयों की भी।

१९४७ से पूर्व देश परतन्त्र था, उस परतन्त्रता में भी विश्वविद्यालयों को स्वतन्त्रता प्राप्त थी और उस समय का शासक उस स्वतन्त्रता का सम्मान करता था। देश स्वतन्त्र हो गया; किन्तु हमारी परतंत्रता बढ़ती गयी। आर्थिक स्वतन्त्रता आयी–राष्ट्रीयकरण हुआ, जिसका अर्थ था सरकारीकरण। सरकारीतंत्र की अस्थिरता ने देश में उच्छृंखलता पैदा की। उत्तरदायित्वों से शून्य अधिकारी की मांग बढ़ी और इसका अवश्यंभावी परिणाम युवकों को भोगना पड़ा। युवक आज की भयंकर परिस्थिति के जनक भी हैं और भोक्ता भी। ऐसे पर्यावरण में मैं गुरुकुलों के आदर्शों की बात ही नहीं करना चाहता।

नव स्नातकों को बहुत बहुत आशीर्वाद और शतशः बधाइयां आप और आपके गुरुकुल के गौरव में देश का गौरव है। मेरी समस्त शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। मैंने वही कार्य किया। उनकी एक एक ईंट पर मुझे गर्व है और प्यार है। पर जब आज उसकी धरती पर चलता हूँ, तो आंखों को नीचे किये हुए, सशंकित सा, जहां वर्षों से दीक्षान्त समारोह ही न हो पाया।

□□□

यज्ञाग्नि के दिग–दिगन्त हो, सुरभित व्याधि विपद भय क्षय हो।
वैदिक विचार धारानुकूल प्रिय जन-जन का परिपूर्ण हृदय हो ॥
ओम पताका घर–घर फहरे ऋषिवर दयानन्द की जय हो।
सत्पथ प्रेरक अटल व्रत, आर्यों का ध्रुव सम दृढ़ निश्चय हो ॥
निन्दक वेद पराजित हों, वैदिक धर्म की अविचल जय हो।
अज्ञाततम का नाश हो, तमसो मा ज्योतिर्गमय हो ॥
रहो स्वस्थ सानन्द प्रसन्नचित, जिओ सुखी शत वर्ष अभय हो।
सब विधि यह नव वर्ष सभी को सुखद शांति मंगलमय हो ॥

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
अधिष्ठाता–वेद प्रचार विभाग, दिल्ली
आर्य प्रतिनिधि सभा, १५–हनुमान रोड,
नई दिल्ली–११०००१

गुरुकुलों की समस्याओं का एक ही हल है

–डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले गुरुकुलों की बाढ़ सी आ गयी थी। जगह-जगह गुरुकुल खुल रहे थे। कोई राज्य ऐसा नहीं था जिसमें गुरुकुल नाम की कोई न कोई संस्था नहीं थी। महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री राजेन्द्र प्रसाद ये सब राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र अगर कहीं देखते थे, तो उनकी दृष्टि गुरुकुलों की तरफ जाती थी। नाम चाहे गुरुकुल हो, चाहे विद्यापीठ हो–सबका मतलब एक ही था–राष्ट्रीयता, भारतीयता, इस देश की संस्कृति में प्रेम। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह स्वाभाविक था कि इन संस्थाओं को सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त होती, क्योंकि देश के अन्धकार के युग में ये ही राष्ट्रीयता, भारतीयता तथा देश की संस्कृति को बनाये रखने वाले केन्द्र थे, जिन्होंने बिदेशी संस्कृति के इस देश की संस्कृति पर हो रहे आक्रमण का डटकर मुकाबला किया था।

स्वतन्त्रता आयी और सरकार ने १९६२ में गुरुकुल पद्धति के मूल स्रोत गुरुकुल कांगड़ी को विश्वविद्यालय की मान्यता प्रदान की। यह मान्यता इस कारण नहीं दी गयी थी कि जहां गुरुकुल स्थापित था उसके आस-पास अंग्रेजी, गणित, फिलॉसफी, सोशियोलोजी आदि की उच्च शिक्षा देने वाली संस्थाएं नहीं थीं। स्कूल-कॉलेज जगह-जगह शहर-शहर खुले हुए थे जहां प्रचलित शिक्षा पद्धति के अनुसार जो चाहता शिक्षा प्राप्त कर सकता था। गुरुकुल को विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता देने का लक्ष्य यह था कि जिन सिद्धान्तों को लेकर गुरुकुलों की स्थापना की हुई थी उन सिद्धान्तों को सुरक्षित रखा जाये। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के कुछ आधारभूत सिद्धान्त हैं। उदाहरणार्थ, ब्रह्मचर्य, तपस्या का सादा जीवन, गुरु-शिष्य का दिन-रात का सम्बन्ध, आश्रम-व्यवस्था, प्रातःकाल उठकर संध्या-हवन करना, संस्कृत तथा वैदिक संस्कृति का ज्ञान एवं उसे जीवन में उतारना, सह–शिक्षा का न होना, जन्म की जात-पांत को न मानना इत्यादि ये गुरुकुल शिक्षा पद्धति के आधारभूत सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों का यह अर्थ नहीं है कि गुरुकुल में पढ़े बालकों को वर्तमान विज्ञान से वंचित रखा जाये। जब गुरुकुल काँगड़ी अपने यौवन पर था तब यहां के विद्यार्थी उक्त सिद्धान्तों को जीवन में

घटाते हुए शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिकतम विज्ञान का पूर्ण ज्ञान रखते थे, साथ ही संस्कृत के भी पूर्ण पंडित होते थे। थोड़े शब्दों में कहा जाए तो कहा जा सकता है कि गुरुकुल के विद्यार्थी प्राचीन भारतीय संस्कृति में ओत-प्रोत होने के साथ-साथ पूर्व तथा पश्चिम के विज्ञान में भी निष्णात होते थे और इसी संमिश्रण को गुरुकुल शिक्षा पद्धति का नाम दिया गया था। १९६२ से जब गुरुकुल काँगड़ी को सरकार द्वारा विश्वविद्यालय की मान्यता तथा आर्थिक सहायता दी जाने लगी तब गुरुकुल का यही चित्र सरकार के सामने था, यही उसका स्वप्न था। यह मान्यता गुरुकुल विश्वविद्यालय को नहीं, परन्तु गुरुकुल कांगड़ी जैसा भी वह था उसे दी गयी थी।

दुर्भाग्यवश, अब स्थिति वह नहीं है। अब जो छात्र विश्वविद्यालय की कक्षाओं में पढ़ते हैं उन्हें गुरुकुल की परम्पराओं का न तो ज्ञान है, न उन परम्पराओं को जानने की उनमें उत्सुकता है। अब गुरुकुल के विद्यालय विभाग में तो वह परम्परा मौजूद है, परन्तु गुरुकुल विश्वविद्यालय विभाग में अपनी वह विशेषता नहीं रही जिसके कारण इस सस्था को विश्वविद्यालय की पदवी दी गई थी। ९-१० मार्च ८४ को युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन की एक विजिटिंग कमेटी गुरुकुल विश्वविद्यालय की कुछ आर्थिक योजनाओं का अध्ययन करने वहां गई थी। मैं भी उनके साथ गुरुकुल गया था। बातचीत के दौरान इस कमेटी के एक मुख्य सदस्य ने मुझे कहा कि सुना है वहां यज्ञशाला में कोई यज्ञ नहीं करता, वह सूनी पड़ी रहती है। मैंने उन्हें कहा कि असली गुरुकुल है, छोटे बच्चों का गुरुकुल, जिसमें बाल्यावस्था में बच्चे लिये जाते हैं, उसमें तो प्रातः सायं दोनों समय सन्ध्या हवन होता है। जब हम लोग गुरुकुल पहुँचे, रात को सोने के बाद उठने पर प्रातः चार बजे ब्रह्मचारी वेदों के मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे और पांच बजे के लगभग शौचादि से निवृत्त होकर योगासन कर रहे थे। यह सब देखकर कमेटी के सदस्य प्रभावित अवश्य हुए, परन्तु मेरा मन कहता रहा कि दिखाते हम इस बच्चों के गुरुकुल को हैं और इसका लाभ मिलता है गुरुकुल के उस भाग को जिसमें न गुरुकुलीयता है, न गुरुकुलीय संस्कृति है और जिसमें 'गुरुकुल' इस नाम के सिवाय ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे यथार्थ रूप में गुरुकुल कहा जा सके, ऐसा गुरुकुल जो गुरुकुलीय सिद्धान्तों पर आधारित हो।

मैंने यह सारी समस्या कमेटी के सामने नग्न रूप में रखी। गुरुकुल को अनुदान के रूप में जो मान्यता मिली है वह उसके गुरुकुलीय रूप को, गुरुकुलीय संस्कृति को कायम रखने के लिये मिली है, परन्तु इस ग्रान्ट से लाभ मिल रहा है गुरुकुल के उस भाग को जो गुरुकुलीय रूप या गुरुकुलीय संस्कृति नहीं है। होना तो यह चाहिए था कि गुरुकुल विश्वविद्यालय में वे विद्यार्थी दिखलायी देते जो अन्य शिक्षा संस्थाओं से अपनी विशेषता के कारण भिन्न हैं, परन्तु हो यह रहा है कि इसका विकास अन्य चालू शिक्षा संस्थाओं का प्रतिबिम्ब होता जा रहा है। उसी के लिये लाखों रुपयों की माँग हो

रही है, और उसी के लिये यू० जी० सी० लाखों दे रही है। इस संस्था में वे विद्यार्थी भरती हो रहे हैं जो गुरुकुलीयता या गुरुकुलीय संस्कृति से शून्य होते हैं, अधिकांश संख्या उन्हीं लोगों की है। इस समस्या का हल ढूढ़ना आवश्यक है क्योंकि अगर यह समस्या हल हो जाती है तो भारत भर के सब गुरुकुलों की समस्या इस विश्वविद्यालय का विकसित अंग होने के कारण हल हो जायेगी। इस समय वृक्ष का तना बढ़ता जा रहा है, उसकी जड़ सूखती जा रही है। गुरुकुलीयता या गुरुकुलीय संस्कृति को पनपाने के लिए उसकी जड़ में पानी देना होगा ताकि अपने ढंग का यह वृक्ष हरा-भरा हो, इसके पत्तों में चमक हो, फूलों में सुगन्ध हो और फलों में रस हो।

कमेटी के सदस्यों में से उन सज्जन ने जिन्होंने शंका की थी कि यहां की यज्ञशालाएं सूनी पड़ी रहती है इस समस्या का हल सुझाया। उन्होंने कहा कि गुरुकुल को विश्वविद्यालय की मान्यता उसकी अपनी विशेषता के कारण दी गयी थी। यह विशेषता वहां से शुरु होती है जहां से बालक गुरुकुल में प्रवेश करता है। गुरुकुल का विद्यालय विभाग उसी प्रकार विश्वविद्यालय का अङ्ग है जिस प्रकार गुरुकुल का कॉलेज विभाग अङ्ग है या जिस प्रकार पैर सम्पूर्ण शरीर का अंग है। गुरुकुल विश्वविद्यालय को दी जाने वाली ग्रान्ट के लिये आपको यह प्रयत्न करना चाहिये कि गुरुकुल का विद्यालय विभाग तथा कन्या गुरुकुल इन दोनों को गुरुकुल विश्वविद्यालय का अभिन्न अंग माना जाय ताकि दोनों विभागों को आर्थिक अनुदान से इतने उच्च स्तर पर लाया जा सके जिस कारण आपके गुरुकुल के वातावरण में पढ़े हुए छात्रों तथा छात्राओं से सारा विश्वविद्यालय भर जाये और आपको बाहर से छात्र लेने की आवश्यकता न रहे, इसी प्रकार आप अपनी संस्कृति तथा अपनेपन को कायम रख सकते हैं अन्यथा बाहर से छात्र भरती करते-करते किसी समय आप नाम मात्र के गुरुकुल कहलायेंगे, आपका अपनापन नष्ट हो जायगा, अनुदानों से आप एक बड़ी युनिवर्सिटी बन जायेंगे, परन्तु भीतर से खोखले हो जायेंगे।

इस सिलसिले में उन्होंने अलीगढ़ यूनिवर्सिटी तथा जामिया मिलिया का दृष्टान्त दिया। ये संस्थाएं स्वतन्त्र रूप से केन्द्र द्वारा शासित हैं। इनके विद्यालय-विभाग भी केन्द्र द्वारा विश्वविद्यालय को प्रदत्त अनुदानों से चलते हैं। इनकी अपनी-अपनी विशेषता है जिसे प्रजातान्त्रिक राज्य में बनाये रखना राजनीतिक सिद्धान्त है। राजनीति में अल्प संख्यक लोगों या संस्थाओं को राज्य से पूर्ण संरक्षण प्राप्त होता हैं। गुरुकुल पद्धति में लड़के-लड़कियों का एक साथ रहकर पढ़ना निषिद्ध है। यह हमारे सिद्धान्त का अंग है। इसमें किसी को दखल देने का अधिकार नहीं है। इसलिये अगर गुरुकुल के संचालक सिद्धान्त के आधार पर लड़कियों के गुरुकुल को एक अन्य परिवार में रखते हैं तो इस आधार पर निरन्तर मिलने वाली सरकारी सहायता से वंचित किया नहीं जा सकता। गुरुकुल विश्वविद्यालय को सैद्धान्तिक रूप से एक 'यूनिट' मानकर उसे विद्यालय-विभाग, कन्या गुरुकुल विभाग

तथा कॉलेज विभाग के तौर पर युनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन से अथवा केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय से अन्य केन्द्रीय विद्यालयों की तरह गुरुकुलीय पद्धति की शिक्षा तथा जीवन विधि को ध्यान में रखते हुए भरपूर आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये ताकि भारत भर के गुरुकुल एक दृढ़ नींव पर खड़े होकर एक सूत्र में बंध सकें। हमें गुरुकुल विश्वविद्यालय के लिए हमारे "फ़ीडिंग गुरुकुल" सहायक होंगे ताकि हमारा विश्वविद्यालय उन गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त छात्रों से इतना भर जाये कि हमें बाहर से छात्रों को लेने की आवश्यकता ही न रहे।

इस दिशा में गुरुकुल के संचालकों को सक्रियता से, तत्परता से तथा बार-बार आवेदन पत्र देकर और मिलने-जुलने से प्रयत्न करने की आवश्यकता है ताकि गुरुकुल शिक्षा पद्धति शिक्षा के जगत् में अपना स्थिर स्थान बना सके। इस समस्या को हल करने के लिये एक साधिकार कमेटी बना देनी चाहिए जो सिर्फ इस समस्या को हल करे, क्योंकि गुरुकुलों के अध्यापकों का असन्तोष दूर करने का यही एक मार्ग है कि उन्हें विशेष पद्धति का अनुसरण करने के कारण गुरुकुल विश्वविद्यालय के यूनिट का अंग स्वीकार किया जाय।

□□□

वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति

—डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,

बृहत्तर भारत प्राचीन भारतीय इतिहास के गौरव की गाथा है। हमारे सांस्कृतिक प्रचार की एक रोचक कहानी है और विश्व को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने का एक प्रबल प्रयास है। इसीलिये प्रस्तुत विषय पर आप के समक्ष कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को रखने का प्रयास किया है।

इतिहास साक्षी है कि विश्व में भारतीय संस्कृति के प्रसार की कहानी बेजोड़ है। ईसाईयत के प्रचारक जब अपने धर्म प्रचार के लिये निकले तो उनके एक हाथ में बाईबिल और दूसरे हाथ में शराब की बोतल थी। ईसाई धर्म को फैलाने के लिये वे बाईबिल मुफ्त बांटते थे और प्रलोभन के रूप में अंग्रेजी शराब की बोतल भी दी जाती थी। शराब तो प्रतीक है। कहने का अभिप्राय है कि ईसाईयत को फैलाने के लिये प्रलोभन के समस्त मार्ग खोल दिये गये थे। ठीक इसी प्रकार से इस्लाम के बन्दे जब अपने धर्म प्रचार के लिये निकले तो उनके एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार थी। कुरान के अपनाने से जो इनकार करता था, दूसरे साथ में लटकी हुई तलवार से उसकी गर्दन काट दी जाती थी। यह बात प्रायः सर्वविदित है कि हजरत मुहम्मद साहब के पश्चात् उनके खलीफाओं के समय में इस्लाम धर्म का प्रचार और प्रसार बलपूर्वक किया गया। सातवीं शती में अरब प्रायद्वीप में इस्लाम धर्म का अभ्युदय हुआ था और आठवीं शती के मध्य तक विश्व के एक विशाल भूखण्ड पर इस्लाम की विजय वैज्यन्ती फहराने लगी थी। इस्लाम की विश्वव्यापी लहर शीघ्र ही सीमान्तों से भारत में प्रवेश करने लगी थी। किन्तु सुदीर्घ काल तक मुस्लिम शासकों द्वारा शक्ति प्रयोग तथा शान्ति पूर्वक प्रचार से भो इस्लाम धर्म को भारत में उल्लेखनीय सफलता मिली। भारत में आने से पूर्व इस्लाम जिन देशों में गया था, उसे विलक्षण सफलता मिली थी, किन्तु इस देश में काफी प्रयास के बाद भी इस्लाम भारत के एक बहुत थोड़े से भाग को अपना अनुयायी बना सका था।

ईसाई और इस्लाम धर्म के प्रचार की तुलना जब भारतीय संस्कृति के प्रचार के साथ जाती है, तो एक अजीब ही दृश्य हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। ईसा मसीह और हजरत मुहम्मद साहब से सैकड़ों वर्ष पूर्व जब भारतीय पण्डित अपनी संस्कृति के प्रसार के लिये भारतीय सीमाओं से

बाहर निकले तो उनके हाथ न कोई विशेष पोथी थी और न शराब की बोतल या तलवार। वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के प्रसार की कहानी तो निराली है।

प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति भारतीय सीमाओं को पार करके जिस विशाल प्रदेश में फैली, उसे ही हम वृहत्तर भारत कहते हैं। इसमें साइबेरिया से सिंघलद्वीप और ईरान से प्रशान्त महासागर के बोर्नियों और बालि टापू तक का फैला हुआ विशाल भूखण्ड सम्मिलित है। भारत की इस सांस्कृतिक विजय की कहानी बड़ी ही अद्भुत है। रक्त की बूंद भी बहाये बिना भारतीय पण्डितों ने जो कार्य किया विश्व के इतिहास में उसका सानी नहीं है। ईसा के जन्म से सैकड़ों वर्ष पूर्व भारतीय पण्डित भारतीय सीमाओं को पार करने लगे थे। मन में कोई प्रलोभन नहीं था। शक्ति की बात कभी उठो ही नहीं। एक ही संकल्प था कि विश्व को मानवता का सन्देश देना है। बदले में लेने की कोई भी भावना नहीं थी। आने जाने की बात आज बड़ी सरल है। यातायात के द्रुतगामी साधनों ने दूरियों को लगभग समाप्त कर दिया है। किन्तु प्राचीन काल में सीमाओं को पार कर बाहर जाना एक कठिन बात थी मार्ग के पर्वत जंगली जानवर और मरुस्थल बहुत बड़े अवरोधक थे। पैदल यात्रा में जाड़ा, गर्मी और बरसात की समस्यायें भी आती थीं। इनकी कोई भी चिन्ता न करते हुए भारतीय पण्डितों ने जो कार्य किया है उसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

भारतीय संस्कृति के प्रसार के दो प्रधान प्रेरक कारण थे। प्रथम तो आर्थिक है। वित्रेषण मनुष्यों को दूर दूर के देशों में जाने और भारी संक्टों के उठाने की प्रेरणा देता है। हिन्द महासागर में भारत की केन्द्रीय स्थिति होने से वह प्राचीन विश्व के सभ्य देशों के समुद्री रास्तों के मध्य में पड़ता था। अतः भारतीय पश्चिम के सिकन्दया और पूर्व में चीन के समुद्र तक व्यापार के लिये जाया करते थे। उन दिनों यह समझा जाता था कि वर्मा, मलाया, जावा तथा सुमात्रा आदि देशों में सोने की खानें हैं। इन्हें सुवर्ण भूमि और सुवर्ण द्वीप से नाम से पुकारा जाता था। धन की आशा में भारतीय व्यापारी जहां गये वहां स्वाभाविक रूप से भारतीय संस्कृति भी ले गये। असभ्य जातियों को सभ्य बनाने में भारतीय व्यापारियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन व्यापारियों से प्राथमिक जानकारी मिलने के फलस्वरूप, भारतीय संस्कृति प्रसार का दूसरा कारण भी निर्मित हो गया। यह दूसरा कारण लोक कल्याण की कामना और धर्म प्रसार को भावना थी। इससे अनुप्राणित होकर भारतीय ऋषि और चित्रक मानव जाति को सभ्य और उन्नत बनाने के लिये निकल पड़े। कभी-कभी महत्त्वाकांक्षी सरदारों तथा क्षत्रिय राजकुमारों ने भी वृहत्तर भारत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के प्रसार के तीन मुख्य साधन व्यापारी, धर्म प्रसारक और उपनिदेशक थे। हमारे उपनिदेशक का आशय दूसरे देशों में भारतीयों का स्थायी रूप से बस

जाना था। सुवर्णद्वीप में इस प्रकार के अनेक भारतीय राज्य स्थापित हुए। कहा जाता है कि अशोक के काल में निर्वासित भारतीयों ने मध्य एशिया की एक प्रमुख बस्ती खौतन का उपनिदेशक कुणाल की हृदयस्पर्शी कथा ने संबन्धित है। कुणाल अशोक का प्रिय पुत्र था। उसकी आखें बहुत सुन्दर थी। युवा होने पर उसका विवाह काँचनमाला के साथ हुआ। अशोक ने बुढ़ापे में तिष्यरक्षिता नामक एक सुन्दरी ने विवह किया। यह स्त्री कुणाल की मनमोहक आंखों पर मुग्ध थी उसने कुणाल से प्रणय की याचना की किन्तु पुत्र ने विमाता के साथ इस पाप को स्वीकार नहीं किया। अत: तिष्यरक्षिता उसकी कहर शत्रु बन गयी। कुछ समय बाद कुणाल को तक्षशिला का प्रान्तपति बनाकर वहां भेज दिया गया। इसी बीच अशोक बीमार पड़ा। उसकी चिकित्सा का भार तिष्यरक्षिता पर था। उसे अपना बैर चुकाने का अवसर मिल गया। उसने तक्षशिला के पौरों और जानपदों के पास एक जाली चिट्ठी भेजी। इसमें अशोक की ओर से यह आदेश था कि कुणाल की आंखें निकाल ली जायें। तक्षशिला के पौरजानपद इस आदेश को मानने को तैयार नहीं थे। किन्तु कुणाल को जब इस आदेश का पता लगा तो उसने बिना किसी हिचक से अपनी आंखे निकलवा दी और कांचनमाला के साथ पाटलिपुत्र लौटा। कहा जाता है कि अशोक को जब इस घटना का पता लगा तो उसने तिष्यरक्षिता को जीवित जलवा दिया। जो लोग इस षड्यन्त्र में सम्मिलित थे, उन्हें देश निर्त्रासन की सजा दी गयी। राज्य से निकले हुये ये व्यक्ति खौतन में जाकर बस गये। यह भी कल्पना की गयी है कि सम्राट अशोक मृत्यु दण्ड देना पसन्द नहीं करता था। उस समय राज–द्रोहियों को निर्वासन का दण्ड दिया था और सम्भवतः इस कार्य के लिये मध्य एशिया के क्षेत्र को चुना गया था। आठवीं शताब्दी तक मध्यएशिया में भारतीय संस्कृति के यहां इतने अधिक अवशेष मिलें हैं कि इसे उपरलाहिन्द कहा जाता है। उपरला हिन्द होते हुए भारतीय संस्कृति का प्रचार चोन और जापान में हुआ। पूर्वी देशों में भारतीय संस्कृति का फैलाव मानव जाति के विकास में भारतवर्ष की बहुत बड़ी देन है। मध्य एशिया इसमें महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। अत: इस क्षेत्र में भारतीय संस्कृति का फैलना असाधारण महत्त्व रखता है। वर्तमान समय में साईबेरिया के दक्षिण में. तिव्वत तथा भारत के उत्तर में, कैस्पियन सागर के पूर्व में तथा गौवी मरुस्थल के पश्चिम में अवस्थित मध्य एशिया के विशाल भूखण्ड को तुर्किस्तान का नाम दिया जाता है। राजनीतिक दृष्टि से आज इसके तीन बड़े भाग हैं। चीनी—तुर्किस्तान, रुसी–तुर्किस्तान और अफगान–तुर्किस्तान। मुस्लिम आक्रान्ताओं के कारण यहां के अधिकांश प्राचीन अवशेष नष्ट हो चुके हैं। फिर भी पूर्वी अथवा चीनी तुर्किस्तान से पुरातत्त्व की प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है।

प्राचीन काल में वृहत्तर भारत के दो प्रधान क्षेत्र थे। प्रथम तो मध्य एशिया जिसकी संक्षिप्त चर्चा आप की गयी। दूसरा था दक्षिण पूर्वी एशिया इस सम्पूर्ण क्षेत्र को परला हिन्द के नाम से पुकारा

जाता है। इसमें वर्मा, मलाया, कम्बुज, जावा, सुमात्रा, बालि, बोर्नियो और प्रशान्त महासागर के अनेक क्षेत्र सम्मिलित थे। बुद्ध और मौर्यकाल में पूर्व के इन प्रदेशों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध रहा है। परन्तु ईसवी सन् के प्रारम्भ से भारतीयों ने अपने वहाँ उपनिवेश बसाने प्रारम्भ कर दिये। शुंग–सातवाहन काल तक दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीयों की अनेक बस्तियां बस गयी थीं। गुप्त काल में तो यह दशा आ गयी कि इस क्षेत्र के प्रायः सभी देशों में ऐसे राज्य कायम हो गये। जिन्हें पूर्णतया भारतीय कहा जा सकता है। गुप्तकाल में भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी प्रसार प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है।

जब भारतीयों ने दक्षिण पूर्वी एशिया में प्रवेश करके अपने उपनिवेश स्थापित किये, तो उस समय यह भूखण्ड बर्बर जातियों द्वारा आवासित था। हिन्दू आवासकों ने इन्हें सभ्यता का प्रथम पाठ पढ़ाया। जीवन का शायद ही कोई ऐसा पहलू बना हो, जो इनके प्रभाव से अछूता रह पाया हो। सुवर्ण द्वीप के आवासन का श्रेय हिन्दू राजकुमारों और ब्राह्मणों को है अतः यहां शैव और वैष्णव धर्मों की प्रधानता रही, जावा तथा बोर्नियो आदि स्थानों से हिन्दू देवताओं की सैकड़ों मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्व वेत्ता क्राफोर्ड ने तो जावा के सम्बन्ध में लिखा है कि पुराणों का शायद ही कोई ऐसा देवता हो जिसकी प्रतिमा जावा में न पाई गई हो। आज भी बालि के शिल्पी, इन्द्र, विष्णु और कृष्ण को मूर्तियाँ बनाते हैं। यहां के अधिकांश निवासी आज भी हिन्दू हैं। जो भारतीय विधि से दुर्गा तथा शिव की पूजा करते हैं। आज बाली में दिखाई देने वाला यह हिन्दू प्रभाव प्राचीन काल में समूचे सुवर्णद्वीप में फैला हुआ था। इस प्रभाव की पुष्टि साहित्य और कला से भी होती है। सुवर्ण द्वीप में लिपि और संस्कृत भाषा का प्रसार था। चम्भा और कम्बुज से संस्कृत के सैकड़ों अभिलेख मिले हैं। कम्बुज के राजा यशोवर्मा ने पातञ्ज महाभाष्य पर टीका लिखी थी। (नवीं शती)

भारतीय धर्म और साहित्य के साथ-साथ सुवर्णद्वीप में भारतीय कला का भी प्रसार हुआ। कम्बुज की मूर्ति कला गुप्त कालीन काल से प्रादुर्भूत हुई थी। धीरे-धीरे यहां के शिल्पी इतने दक्ष हो गये कि उन्होंने पाषाणों में अमर काव्यों की रचना कर डाली। कम्बोडिया तथा जावा के मन्दिरों में रामायण, महाभारत और हरिवंश पुराण के दृश्य बहुत सफाई और सफलता के साथ उत्कीर्ण किये गये हैं। जिस उत्तर भारत में मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा मन्दिरों का विनाश हो रहा था, उस समय कम्बुज में अंकोरवाट और अंकोर धाम के विश्वविख्यात मन्दिरों का निर्माण हो रहा था। (सूर्य वर्मा द्वितीय ११४३ ४५ और जयवर्मा सप्तम ११८१–१२००) वास्तुकला का उच्चतम विकास अंकोरवाट तथा बोरोबुदूर के अद्वितीय मन्दिरों में मिलता है। इस प्रकार के देवालय न भारत में पाये जाते हैं न

किसी दूसरे देश में वे विश्व की अद्भुत् वस्तुओं में गिने जाते हैं तथा इन प्रदेशों में भारतीय संस्कृति के अमर स्मारक हैं। दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय राज्य लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी तक विद्यमान रहे। तत्पश्चात् इस क्षेत्र में इस्लाम धर्म और संस्कृति का प्रसार हुआ।

बृहत्तर भारत की कहानी तो आज पुरानी पड़ गयी है। किन्तु इसकी गौरवमयी गाथा आज भी सजीव है। आज भी आध्यात्मिक दृष्टि से भारत विश्व का गुरु है।

□

मुझे आगे बढ़ना है

चाहे शीतल हिम भी प्रचण्ड आग बन जाए,
चाहे 'पुष्प-माला' भी कराल नाग बन जाए,
चाहे अनन्त आनन्द भी 'नाश-राग' बन जाए,
संघर्ष को मुस्कान समझ, जी भरके खिलना है।
मुझे आगे बढ़ना है।

चाहे मेरी अनन्त खुशियां बनें अनन्त बाधाएं,
चाहे जलकर राख बने 'ओ' अनन्त आशाएं,
चाहे पल न आराम करें सब अटूट क्रूरताएं,
गम को भी सावन समझ, जरुर मुझे झूलना है।
मुझे आगे बढ़ना हैं।

मिले लाभ न चाहे पर पाना कुल मुझे है,
तीखे-तीखे शूलों को भी कहना फूल मुझे है,
परार्थ ही हो अभीष्ट स्वार्थ, अनुकूल मुझे है,
कुर्बानी को खुशी समझ, सदा गले मिलना है।
मुझे आगे बढ़ना है।

कविरत्न—महेन्द्रसिंह 'उत्साही'

आचार-शास्त्र एक तुलनात्मक अध्ययन

—डॉ० जयदेव वेदालंकार
रीडर एवं अध्यक्ष दर्शन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

आचार शास्त्र के विषय में भारतीय मनीषियों एवं पाश्चात्य दार्शनिकों ने पर्याप्त अन्वेषण किया है। आचार शास्त्र दर्शनशास्त्र का प्रमुख अङ्ग माना जाता है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार आचार शास्त्र दर्शन का क्रियात्मक पहलू है। दर्शन शास्त्र हमें सैद्धान्तिक ज्ञान कराता है तो आचार शास्त्र शुभ और अशुभ का निर्णय करता है। आचार शास्त्र के अन्दर प्रमुखत: नैतिक निर्णयों का व्याख्यान होता है। हमने कोई कार्य किया तो लोग कहते हैं—उसने अच्छा किया। यह जो निर्णय है कि यह अच्छा किया—इसका निर्णय हम किसी की अपेक्षा से कहते हैं। कान्ट के अनुसार शुभ अपने में शुभ है। वह किसी की अपेक्षा नहीं रखता।[1] उसका कहना है कि एक भिखारी हमारे समक्ष भीख मांगने आता है, हम उसको टालने के लिये चवन्नी फेंक कर मारते हैं, वह होटल में जाकर उससे कुछ लेकर खा लेता है। कान्ट के अनुसार यह नैतिकता नहीं है। उसका कथन है कि डाक्टर आपरेशन करता है, उस आपरेशन करने से हमें उस समय दु:ख होता है, परन्तु डाक्टर का उद्देश्य हमें दु:ख पहुँचाना नहीं है। इसी प्रकार एक शेर किसी मनुष्य पर आक्रमण करता है, हम उस मनुष्य की रक्षा के लिए उस शेर पर गोली चलाते हैं परन्तु वह गोली शेर को न लगकर मनुष्य को लग जाती है। कान्ट का कहना है कि यद्यपि उस मनुष्य की मृत्यु हो गई परन्तु हमने यहां उस मनुष्य के उद्देश्य को देखना है जिससे उसने गोली चलाई। गोली चलाने का उद्देश्य उसका शुभ था अत: नैतिकता है अनैतिकता नहीं। कान्ट का कहना है कि उसी नियम का पालन करो जो सर्वव्यापक बन सके।[2]

आचार शास्त्र में कई प्रकार की मान्यता हैं उनमें से एक मान्यता है सुखवाद। यह सुखवाद दो प्रकार का होता है—(१) स्वार्थ सुखवाद (२) परार्थ सुखवाद।

---

1 Good will is the only good that is good without qualification.

2 Act that principle which.........be an universal law.

सुखवादी दार्शनिक मिल, बेन्थम, स्पेंशर आदि हैं। परन्तु ये नैतिक सुखवाद को मानते हैं। इनका कहना है कि—जैसे मैं सुखी होना चाहता हूँ, इसी प्रकार दूसरे प्राणी भी सुख चाहते हैं इसलिये मुझे भी और को दुःख नहीं देना चाहिये क्योंकि मैं भी दुःखी नहीं होना चाहता। इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन में मनोविज्ञान नैतिक सुखवाद का प्रादुर्भाव होता है। इससे पूर्व तो स्वार्थ सुखवादी दार्शनिक दूसरों के सुख की उपेक्षा करते थे। उनका नीति सम्बन्धी सिद्धान्त चार्वाक के समान है। चार्वाक का कहना है कि विषयजन्य जो सुख हैं वही हमारा अन्तिम उद्देश्य है। वह कहता है कि जब तक जिओ सुख से जिओ चाहे ऋण भी क्यों न लेना पड़े।1 यही विचारधारा स्वार्थ सुखवादी पाश्चात्य दार्शनिकों की थी इस प्रकार पाश्चात्य नीतिशास्त्र में प्रकृतिवाद अर्थात् व्यवहार वाद, अन्तःप्रज्ञावाद, सुखवाद, विकासवाद अर्थात् पूर्णतावाद आदि वादों का प्रचलन हुआ। विकास वाद के अनुसार सर्वाङ्गीण, विकास ही मनुष्य का उद्देश्य है। इसमें हेगल एलक्जेन्डर, स्पेंशर, हर्वर्ट, ग्रीन और डारविन आदि का नाम लिया जा सकता है। इनमें हेगल अध्यात्मवादी विकासवादी है। आगे चलकर अरविन्द पर इसका प्रभाव पड़ा।

नीतिशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बुद्धिवाद है। इस विषय में स्पिनोजा का कहना है कि नीतिशास्त्र एक सोद्देश्यपूर्ण शास्त्र है। अर्थात् मनुष्य का सम्बन्ध जहाँ प्रकृति के साथ है वहाँ समाज के साथ भी है। मनुष्य को अपना उद्देश्य बनाना चाहिये कि वह प्रकृति और समाज के साथ सन्तुलन बना सके। उसे चाहिये कि वह ज्ञानमार्ग की सीढ़ियों द्वारा और शरीर के सन्तुलन को मन के साथ रखता हुआ मौक्तिका ज्ञान को प्राप्त कर लेवे।

बटलर का कहना है कि हमें अन्तर्मुखी और बाह्य निरीक्षण द्वारा यह पता लगता है कि नैतिक ज्ञान सहज ज्ञान है। मनुष्य के अन्दर परोपकार, दया, सहानुभूति आदि जन्मजात हैं। वह कहना है कि हमारी अन्तर्बोध की शिक्षायें स्वयं भगवान् की शिक्षायें हैं इस अन्तर्बोध के सिद्धान्त को मानकार बटलर ने स्वार्थवाद का खण्डन किया है। इस प्रकार पाश्चात्य दार्शनिक भौतिकवाद से चलकर अध्यात्मवाद की ओर प्रवेश करते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि नैतिकता के सिद्धान्त कैसे बनते हैं ? उनका मापदण्ड क्या हो ? कुछ लोग परम्परा, रीतिरिवाज को ही नैतिकता मानते हैं। जिसमें परोपकार की भावना से कृत कार्य नैतिक माना जाता है। कुछ अन्य दार्शनिक एक लक्ष्य को सामने रख कर नैतिकता का निर्णय देते हैं। जैसे सुखवादी चार्वाक आदि हैं। कुछ लोग निरपेक्ष सिद्धान्त के रूप में नैतिकता को मानते हैं, जैसे-कान्ट।

१ "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।"

महर्षि दयानन्द जी के नीतिशास्त्र के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व यह विचार करना होगा कि वे नैतिक सिद्धान्तों को किन बातों पर आधारित मानते हैं अर्थात् उनका नैतिकता का मापदण्ड क्या है ? क्योंकि कोई भी दार्शनिक कुछ स्वतःसिद्ध सिद्धान्तों को मानकर उनके अनुसार अपने माप-दण्ड बनाता है। ऋषि दयानन्द जी के नैतिक सिद्धान्त निम्नलिखित बातों पर आधारित हैं—

१. आत्मा अभौतिक है, असृष्ट है, तथा अमर है।

२. यह चेतन है इसमें ज्ञान, संवेदना और प्रयत्न होते हैं।

३. आत्मा स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता इसकी मौलिक सम्पत्ति है। इसको स्वतन्त्रता किसी बाहरी तत्व से प्राप्त नहीं हैं, परन्तु स्वतः प्राप्त है। परन्तु यह स्वतन्त्रता कर्म करने में है, फल भोगने में नहीं।

४. आत्मा असीमित नहीं है। इसका ज्ञान,कार्य सब सीमित हैं। इसकी उन्नति और अवनति दोनों संभव हैं उन्नति के लिये प्रयास करना चाहिये।

५. मनुष्य को बहुत ऊंचे उद्देश्य तक जाना है। अतः उसके उत्तरदायित्व का क्षेत्र बहुत बड़ा है। अनेक विकल्पों में से किसी एक को चुनना है। उस चुनाव के लिये आचार शास्त्र सहायक होता है।

६. केवल मनुष्य ही नहीं अपितु प्राणीमात्र के पीछे एक उद्देश्य है।

७. आत्मा सक्रिय तथा विकासशील है। इसी प्रकार संसार भी विकासशील है। संसार की गति से साथ अपनी गति को मिलाना यही नैतिकता सिखाती है।

महर्षि दयानन्द जी इन सिद्धान्त को मानकर चलते हैं। नीतिवाद के सम्बन्ध में वे यंत्रवाद, यथा उद्देश्यवाद दोनों का खण्डन करते हैं। उद्देश्यवादी सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण संसार का केन्द्रबिन्दु है। वह अपने लिए संसार रचता है। इस उद्देश्यवाद के अनुसार आत्मा सर्वथा परतन्त्र हो जाता है अथवा बन्धन में रहता है। पूर्ण स्वतन्त्रतावाद भी ठीक नहीं है क्योंकि इसके अनुसार ईश्वर जीव की रचना करता है और कृपा करके जीवों को स्वतन्त्रता प्रदान करता है। प्रथम सिद्धान्त के अनुसार तो जीवात्मा को अपने पथ निर्वाचन करने की स्वतन्त्रता नहीं रहती। जब कभी जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं है तो उन कर्मों के फल के भोगने में बाध्य नहीं होने चाहियें क्योंकि जो जैसा करता है वैसा ही भोगता है यह एक स्वतन्त्र सर्वतन्त्र सिद्धान्त है।[1] अतः इस सिद्धान्त के अनुसार तो नैतिकता का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे मत के अनुसार ईश्वर स्वतन्त्रता प्रदान करता है, इससे स्वतन्त्रता का मूल्य नहीं रह जाता है।[2] स्वामी जी के सिद्धान्त दोनों ही मतों के विरोधी हैं। ऐसे

१ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।।

2 Brought freedom is not freedom.

ईश्वर का होना तो व्यर्थ ही है जो अपने स्वार्थ के लिए जीवों की सृष्टि करता है। जीव को खतरे में डाल देता है। यह मानना कि संसार एक जेलखाना है, ईश्वर इसका जेलर। यह भी मान्यता अनुचित है। ऐसा मानने पर तो नैतिकता का कोई स्थान ही नहीं रहता है। जो लोग ईश्वर और जीव की काल्पनिक सत्ता मानते हैं। उनका भी ऋषि खण्डन करते हैं। इस प्रकार दोनों प्रकार के मत, भौतिकवाद एवं परतन्त्रवाद जिसे अध्यात्मवाद भी कहा जाता है, दोनों का ही खण्ड़न करते हैं। स्वामी मध्यम मार्ग को अपनाते हैं। उनका सिद्धान्त है जैसा कि भारतीय दर्शन में माना गया है कि आत्मा अमर है। वह पुन: जन्म लेता है। जो भी अच्छे बुरे कर्मों को करता है, उस का फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। इन का कहना है कि जब मनुष्य अच्छे कर्मों को करता है तो उसे उत्साह, आनन्द आदि का अनुभव हृदय में होता है और बुरे कर्म करता है तो उसको अपने हृदय में भय, लज्जा, शंका आदि का अनुभव होता है। यहाँ पर वे एक प्रकार से अन्तरज्ञान[1] के सिद्धान्त को मानते हैं, जिसे बलटर भी मानता है। स्वामी दयानन्द जी के अनुमार मनुष्य नैतिक सिद्धान्तों का केन्द्रबिन्दु है। उनका कहना है कि व्यक्ति समाज के लिये और समाज व्यक्ति के लिए है। वे आर्य-समाज के दसवें नियम में लिखते हैं कि "सामाजिक,सर्वहितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें और प्रप्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र हैं। इससे स्पष्ट हो रहा है कि ऐसे नियम भी कुछ नहीं जो अधिक समाज का अहित करते हों और ऐसे नियम भी अनुचित हैं जिनमें व्यक्ति के पीछे समाज बलिदान हो जाता हो। यदि व्यक्ति न होंगे तो समाज भी नहीं होगा। इस प्रकार यदि व्यक्तियों का निर्माण हो जावेगा तो समाज का निर्माण भी अपने आप हो जायेगा। दूसरे दार्शनिक समाज का सुधार चाहते हैं। परन्तु महर्षि दयानन्द जी व्यक्ति और समाज दोनों का निर्माण करना चाहते हैं।

महर्षि दयानन्द जी हमें परिधियों में उस प्रकार नहीं बाँधना चाहते हैं जिस प्रकार समाज जाति, रंग और छोटी भावनाओं से बंधा हुआ है। यह मेरा, वह उसका यह भावना छोटे मनुष्यों की है। उदार मनुष्य विश्व को ही अपना परिवार समझते हैं।[2]

महर्षि दयानन्द जी का मन्तव्य है कि जब तक मनुष्य अपने-अपने धर्मों का पालन नहीं करते हैं तभी तक समाज में विश्रृंखलता आती है। धर्म से अभिप्राय किसी मत विशेष से नहीं। उन का कहना है कि ऐसा धर्म मनुष्यकृत नहीं अपितु ईश्वरकृत वैदिक परम्परायें हैं। जिन का उल्लेख वेदों में है। धर्म किसी वर्ग विशेष का नहीं अपितु सर्वमानवहितकारी होता है। जैसा कि मनु जी कहते हैं–

---

1 INTUTION

२ अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

धैर्य रखना, क्षमा करना, इन्द्रियों का दमन करना, मन वचन कर्म से चोरी न करना, आत्मा और मन को पवित्र रखना इन्द्रियों को विषयों में अत्यधिक लिप्त न करना, मनुष्यों का धीर होना, विद्या को प्राप्त करना, मन वचन और कर्म से सत्य का पालन करना और क्रोध कभी न करना ये धर्म के लक्षण हैं[1] अर्थात् इन के पालन का नाम धर्म है। यहाँ पर ये धर्म किसी वर्ग विशेष का धर्म नहीं हैं, अपितु इस धर्म का पालन संसार का प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है।

महर्षि दयानन्द जी यह मानते हैं कि मनुष्य का लक्ष्य अपने आप को जानना अथवा परमात्मा को प्राप्त करना है। इस आचार शास्त्र का अन्तिम उद्देश्य पूर्णता को प्राप्त करना अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करना है, परन्तु इस के साथ-साथ सामाजिक उन्नति भी करना है। जैसा कि वैशेषिक दर्शन में कहा है—धर्म वह है जिससे इस लोक की उन्नति और मुक्ति की प्राप्ति हो।[2] अतः अभ्युदय साधन है और निश्रेयस् साध्य है। धर्म दो प्रकार का है। पहला सामाजिक दूसरा व्यक्तिगत जैसे हिंसा न करना, चोरी न करना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और संग्रह अधिक न करना[3] ये पाँच यम कहलाते है, जो सामाजिक धर्म के अंग कहे जा सकते हैं। जिन का पालन अवश्यमेव करना चाहिये। इन को सार्वभौम महाव्रत कहा गया है। भारतीय आचार शास्त्र प्रणेताओं ने समस्त समाज को दो प्रकार से विभक्त किया है। प्रथम आश्रमों की दृष्टि से इस प्रकार है— (क्रमशः)

---

१ धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शोचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ मनु०॥

२ यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धि स धर्मः। (वैशे० १-१)

३ तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः॥ (सत्यार्थप्रकाश समु० सात)।

फूलों की घाटी

–डॉ० काश्मीर सिंह भिण्डर

इतिहास विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

प्राचीन काल से ही पर्वतों का अपना अलग से आकर्षण रहा है, चाहे ग्रीष्म ऋतु हो, शरद् हो या वर्षा ऋतु, हर मौसम में पर्वत आनन्ददायक होते हैं। शरद् ऋतु के प्रारम्भ होते ही पर्वत अपनी शृंखलाओं पर हलकी जमती बर्फ की छटा से जहां मैदान में बैठे साधारण व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, वहीं ग्रीष्म ऋतु के शुरु होते ही हिमालय का प्रत्येक आंचल अपने मदहोश जवानी से आकर्षित करता है। जिस समय सूर्यताप से पर्वतों की चोटियों का बर्फ पिघलने लगता है, उस समय का दृश्य अपना अलग ही स्थान रखता है। मनुष्य इस रोमांस से भरपूर आमन्त्रण को न कभी टाल पाया है और न कभी टाल पायेगा। हिमालय पर्वत की गोद ही ऐसी है जहां मानव की हर आवश्यकता पूरी हो सकती है, जैसे अध्यात्म का आकर्षण, प्राकृतिक सौन्दर्य देखने की लालसा, झर-झर करते झरनों का निनाद, आखेट के लिये घने जंगल, रोगियों के लिए ओषधि, भ्रमण के लिये रमणीक स्थल क्या कुछ नहीं है पर्वतों की गोद में। इसलिये रोनालड ने कहा था कि सही मायने में इन्सान को यदि सब कुछ कहीं मिल सकता है तो वह केवल हिमालय की गोद में। पर्वत सदैव से अपना सब कुछ लुटाकर दूसरों को प्रसन्न करने मात्र में ही खुश रहा है।

मनुष्य सदैव से रमणीय स्थलों की तलाश में इधर से उधर खोज करने में मग्न रहा, इसी तरह की एक खोज में लगा हुआ कामथ कमीशन के अधीन १९३५ में ब्रिटिश लोगों का एक काफिला मैदानों से चलता हुआ हिमालय के शिखर पर जा पहुँचा, जहां उसे फूलों की सुगन्ध ने मदहोश कर दिया। इस सुगन्धमय वातावरण की जगह का नाम है फूलों की घाटी। फूलों की घाटी आज एक विश्व प्रसिद्धि लिये हुए है क्योंकि एक ओर सिक्खों का एकमात्र धार्मिक स्थल हेमकुण्ड और दूसरा है फूलों की घाटी, जिनका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। फूलों की घाटी को जाने के लिये केवल मात्र गोविन्दघाट से ही रास्ता है। गोबिन्दघाट से यह घाटी १९ किलोमीटर की दूरी पर है जिसको पैदल चलकर या छोटे घोड़ों पर सवार होकर तय किया जा सकता है। गोविन्दघाट से फूलों की घाटी एवं हेमकुन्ड तक पगडन्डोनुमा रास्ता है जिसमें एक ओर विशाल पर्वत और दूसरी सिंहनाद करती हुई बाण गंगा, जो प्रत्येक दर्शनार्थियों को प्रेरणा देती है एवं इस दुर्गम रास्ते को तय करने के लिये साहस बढ़ाती है। इस रास्ते को तय करने में स्वस्थ आदमी तक हांफ जाता है। रास्ते की दूरी महसूस न हो इसलिये

प्रत्येक दो किलोमीटर पर चाय की दुकाने यात्रियों को सहारा देने के लिये अपने गन्तव्य पर पहुँचने में सहयोग देती हैं। गोविन्दघाट से घघरिया तक प्रकृति की छटा को देखने वाला तथा हेमकुण्ड की यात्रा को जाने वाला यात्री एक दूसरे का साहस बढ़ाता हुआ आगे चलता है और घघरिया पहुँचने पर अपनी-अपनी दिशा ले लेता है। घघरिया नामक स्थान से दायीं ओर हेमकुण्ड है और बायीं ओर फूलों की घाटी। गुरु गोबिन्द सिंह से देश व धर्म की रक्षा में दुनिया के समक्ष अपने पुत्रों का तथा अपना बलिदान देकर उदाहरण प्रस्तुत किया कि देश व धर्म की रक्षा ही मनुष्य का धर्म है।

इसी स्थान के पास महाकाल का ऐतिहासिक मन्दिर भी स्थित है। हेमकुण्ड का दर्शन करने वाला यात्री इस मन्दिर के दर्शन कर अपने को भाग्यशाली मानता है घघरिया से दर्शनार्थी चलता है तो तरह-तरह की फूलों की गन्ध तथा वातावरण की मादकता उसको छेड़ना शुरु कर देती है। कोई तो इस छेड़खानी से रास्ते में ही इतना मदहोश हो जाता है कि कोई पुष्प आकर अपना वह गीत सुनाये जिससे दोनों का भेद एवं अन्तर भी समाप्त हो जाय। यहां पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर दूध की भांति श्वेत झरने सौन्दर्य में और निखार ला देते हैं और इन्सान को आत्मविभोर कर देते हैं। फूलों की घाटी बारह हजार पांच सौ फिट की ऊंचाई पर स्थित है। मध्य हिमालय में नर-पर्वत और जंस्कार पर्वत से घिरी यह घाटी है, जहां पर विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे फूल यहां की शोभा बढ़ाते हैं, वहीं यहां चारों और दूर-दूर तक फैले देवदार के वृक्ष यहां के सौन्दर्य को श्रीवृद्धि करते हैं। वास्तव में यह स्थान भी इन्सान के लिये आश्चर्यजनक है। यहां ना तो फूलों को कोई रोपता है न ही उनकी किसी प्रकार देखभाल होती है। लाखों फूल जो सैकड़ों प्रकार के हैं, केवल प्रकृति ही उनकी देखभाल करती है। यही वह स्थान है जहां पाण्डु ने तप किया था, यही वह स्थान जहां पाण्डव घटोत्कच पर चढ़कर पहुँचे थे। यही वह स्थान है जहां पुष्पों की शोभा को देखकर द्रौपदी मन्त्रमुग्ध हो गयी थी। इस घाटी का वर्णन द्रोण–पर्व में भी आता है कि जिस समय राजा जयद्रथ ने अभिमन्यु को मार गिराया था उससे पाण्डव पक्ष में जहां अभिमन्यु का दुःख था वहीं दूसरी ओर अर्जुन की प्रतिज्ञा का भय, क्योंकि अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जयद्रथ का वध नहीं कर लूंगा तब तक अन्न ग्रहण नहीं करूंगा। महाभारत में इस स्थान का बहुत ही सुन्दर वर्णन है, जिसमें इस स्थान को देव व ऋषियों का स्थान कहा गया है—

अयं देव निवासो वै गन्तव्यो वो भविष्यति ।
ऋषिनां चैव दिव्यानां निवास पुण्यकर्मणा ॥

महाभारत में ही इस स्थान को सौगन्धिक वन कहा गया है—

एष पन्था कुरुश्रेष्ठ सौगन्धिक वनाय ते ॥

निरन्तर झरने वाले झरनों के जल उस पर्वत के कण्ठदेश में अवलम्बित मोतियों के हार से प्रतीत होते हैं। यहां छाया हुआ कोहरा, हल्की-हल्की बूंदों की बौछार, फूलों की कभी न समाप्त होने वाली खूशबू, रोम-रोम में रोमांस पैदा कर देती है। इतना सुन्दर दृश्य है यहाँ का कि जिसको शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। इस प्रकृति के दैवी बगीचे को देखने के लिये जहां प्रकृति प्रेमी आते हैं वहीं पर बोटनिस्ट यहां पर कैम्प डाले रखते हैं और यहां पर खिले हुए फूलों को एकत्रित कर अपने-अपने लेबोटरीज में ले जाकर टैस्ट करते हैं। लेकिन आज तक कोई वैज्ञानिक यहाँ के रहस्य को नहीं जान पाया है। फूलों की घाटी के सुन्दर दृश्य मानव को इतना अधिक प्रभावित कर देते हैं कि वह दैवीय बगीचे की प्रशंसा में कह उठता है—यही है—स्वर्गलोक और देवलोक।

□

स्वतन्त्रत देश में अवसान और अवसाद ऐसा

स्वतन्त्रत देश में अवसान और अवसाद ऐसा,
दरिद्रता और दैन्य का साम्राज्य जैसा।
सामाजिक हीनता और उदासीनता का अन्धकार ऐसा,
पराभव और पराधीनता का अभिशाप जैसा।
व्यथा और व्यग्रता का मेघ उमड़ता है ऐसा,
रौरव नरक की यातनाओं का सैलाब जैसा,
देश द्रोह का विटप पनपता है ऐसा,
अहिफण उठता है और झूमता है जैसा।
क्रूर उग्रता का कराल कुकृत्य है ऐसा,
निर्दोष मानवता का संहार जैसा।

के० लाल शर्मा

१९५, जी ब्लाक
श्री गंगानगर, राजस्थान

राष्ट्रोत्थान कौन कर सकता है?

–श्री सुरेशचन्द्र त्यागी
प्रिंसिपल–विज्ञान महाविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय

चरित्र के विकास के लिए इच्छा–शक्ति का होना बहुत आवश्यक है। जो व्यक्ति ढुल-मुल होता है, उसमें इच्छा–शक्ति का अभाव होता है। अत: वह दुर्बल–चरित्र होता है। जो एक निश्चय करके उस पर दृढ़ नहीं रह सकता, जो प्रत्येक नवीन मत को ग्रहण कर लेता है, जिसका कोई स्थाई सिद्धान्त नहीं, जिसकी अपनी रुचि नहीं, उसके पास चरित्र का अभाव ही समझना चाहिए। ऐसे पुरुष भले हों अथवा बुरे किसी भी प्रकार के बड़े कार्य करने में अक्षम होते हैं। उनसे समाज का हित तो क्या होगा, वे अपना ही कल्याण नहीं कर सकते। एक चरित्रवान् व्यक्ति के लिए दृढ़ इच्छा–शक्ति की सख्त जरूरत है।

बालकों को अपना निश्चय स्वयं करने देना चाहिए। जो लोग बालकों को आत्मनिर्णय का मौका नहीं देते, जरा सी भी कठिनाई आने पर उनकी सहायता करने को उतावले हो जाते हैं, वे उनके चरित्र–विकास में सबसे बड़े बाधक हैं।

हठधर्मी भी दृढ़ इच्छा का ही एक स्वरूप है; किन्तु हमारा उद्देश्य हठधर्मी को प्रोत्साहित करने का नहीं है। हमारा अभिप्राय उन हालात से है जहां पर या तो व्यक्ति कुछ निश्चय कर ही नहीं पाता या अपनी इच्छा की दुर्बलता के कारण, झूठे दबाव में पड़कर अपना इरादा बदल देता है। लज्जा के कारण अथवा हीनता की भावना से, जो अपने निश्चय पर स्थिर नहीं रह सकता उसका व्यक्तित्व तथा चरित्र व्यर्थ है। वह कल क्या करेगा, कोई नहीं कह सकता। उसके चरित्र में स्थायित्व नहीं, और स्थायित्व ही चरित्र की विशेषता है। जो चरित्रवान् होता है वह अपने उचित निर्णय पर डटना जानता है। इस डटे रहने में उसे इच्छा–शक्ति से ही सहायता मिलती है। भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है—

> प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचै: प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्या:।
> विघ्नै: पुन: पुनरपि प्रतिहन्यमाना: प्रारभ्य चोत्तमजना: न परित्यजन्ति ॥

संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं–उत्तम, मध्यम और नीच। नीच व्यक्ति विघ्नों के भय से किसी कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करते। मध्यम प्रकार के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ तो कर देते

हैं परन्तु विघ्न आने पर उस कार्य को बीच में ही छोड़ देते हैं। उत्तम श्रेणी के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ करके तब तक नहीं छोड़ते जब तक कार्य सिद्धि नहीं हो जाती।

उत्तम प्रकार के व्यक्तियों की इच्छा–शक्ति प्रबल होती है। इस इच्छा–शक्ति के आधार पर ही वे संसार में महान् कार्य कर जाते हैं और अमर हो जाते हैं।

इच्छा–शक्ति एक बहुत बड़ी ताकत है। एक कहावत प्रसिद्ध है—"जहां चाह होती है, वहां राह निकल ही आती है। जिस परिस्थिति में बहुत बड़ी शारीरिक शक्ति से सम्पन्न, किन्तु दुर्बल इच्छा के व्यक्ति घबरा जाते हैं वहां इच्छा–शक्ति के प्रभाव से ही शरीर से दुर्बल पुरुष स्थिर, अचल होकर खड़ा रहता है। महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी, नेताजी सुभाष बाबू इच्छा–शक्ति के आधार पर महान् कार्य करके इतिहास में अपना नाम अमर कर गये हैं। बिना दवा के ही, केवल इच्छा के जोर से अनेक लोग कठिन रोगों तक से मुक्त होते देखे गये हैं।

यह इच्छा–शक्ति है क्या ? यह मनुष्य की कोई मूल शक्ति है अथवा इसका जन्म अकस्मात् हो जाता है और प्रबल से प्रबल विपत्तियों मे टकराने की विलक्षण शक्ति इसमें कहां से आ जाती है ?

जीवन के अनेक अवसर आते हैं जब हमारे सामने निर्णय लेना कठिन हो जाता है और हमें कोई एक मार्ग चुनना होता है। हम तब एक अनिश्चय की दशा में होते हैं। क्या करें, क्या न करें यह हमारी समझ में नहीं आता। हम सोचते विचारते हैं, सभी प्रकार की युक्तियों का सहारा लेते हैं और तब अन्तर्द्वन्द्व के पश्चात् किसी एक निर्णय पर पहुँचते हैं। यह निर्णय हमारी इच्छा–शक्ति करती है।

युद्ध के लिये तैयार अर्जुन के सम्मुख एक बार ऐसा ही संकट उपस्थित हुआ था। उसके सम्मुख प्रश्न था कि वह धर्म–युद्ध करके आत्मीयों की हत्या करे अथवा आत्मीयता के मोह में पड़कर अपने कर्तव्य से विमुख हो जाये। सोचा-समझा, पण्डित प्रवर भगवान् कृष्ण से उपदेश लिया और अन्त में अन्तर्द्वन्द्व के बाद यह निश्चय किया कि मैं युद्ध में भाग लेकर क्षात्र–धर्म का निर्वाह करूंगा। इस निर्णय में यह 'मैं' शब्द विशेष महत्त्व का है। इस निर्णय की प्रेरणा तथा उसको कार्यान्वित करने की प्रबल–शक्ति इस 'मैं' में ही छिपी हुई है, अर्जुन की इच्छा शक्ति का सम्पूर्ण रहस्य इस 'मैं' में ही निहित है।

'मैं" कौन ? अर्जुन, क्षत्रिय शिरोमणि, जगत् विख्यात, क्षात्र-धर्म विवेक सम्पन्न, ज्ञानी अर्जुन यह महान् लज्जा की बात होगी कि साधारण मनुष्यों सी दुर्बलता अर्जुन के आचरण में भी प्रकट हो,

नहीं ऐसा कभी नहीं होगा। मैं क्षात्र-धर्म पालन अवश्य करूंगा, उसके लिये मुझे कुछ भी क्यों न बर्दाश्त करना पड़े। यह 'मैं' अर्जुन के समस्त व्यक्तित्व का, चरित्र का, द्योतक है। इसमें उसका आदर्श 'स्व' है जो अनिश्चय की दशा में भली-भांति स्पष्ट नहीं हो सका था। अतएव इच्छा-शक्ति, चरित्र का बल है और इसी से किसी का व्यक्तित्व निखरता है।

सुन्दर चरित्र के लिए इच्छा-शक्ति की बहुत जरुरत है। जो व्यक्ति दृढ़ निश्चय नहीं कर पाता, जो अपने किसी कार्य पर डट नहीं पाता, उसका व्यक्तित्व प्रभावहीन तथा चरित्र दुर्बल होता है। मनुष्य का विगत जीवन एवं भावी योजनाएं जिस "आदर्श स्व" को बनाती हैं, इच्छा-शक्ति उसी की प्रबल प्रेरणा को कहते हैं। शिक्षकों को चाहिए कि बालकों को आत्म-निर्णय का अवसर दें, जिससे उनकी इच्छा-शक्ति दृढ़ हो सके। वंशानुक्रम, प्रकृति, वातावरण सभी का हाथ चरित्र निर्माण में होता है और उन पर शिक्षकों का कोई नियंत्रण नहीं होता। किन्तु तब भी छात्रों की इच्छा-शक्ति को जगाने के लिए वे जो भी कुछ कर सकते हैं। उन्हें लगन तथा ईमानदारी से करना चाहिए। चरित्रवान् व्यक्तियों पर ही किसी देश का भविष्य निर्भर करता हैं और चरित्र का निर्माण बहुत कुछ शिक्षकों के हाथ में होता है।

आज देश के नवयुवक विज्ञान, इंजीनियरिंग, कृषि आदि क्षेत्रों में उन्नति कर रहे हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश चारों ओर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और बेईमानी का राज हैं। देश तेजी से पतन की ओर जा रहा है। उसका एकमात्र कारण यही है कि नवयुवकों के चरित्र निर्माण की ओर किसी का ध्यान नहीं। हम एक ऐसा देश बना रहे हैं जिसकी नीव रेत के ढेर पर खड़ी है और यह नींव कभी भी बुरी तरह ढह सकती है।

एक अंग्रेजी कहावत है कि "जब किसी का धन नष्ट हो जाये तो समझो कि कुछ नष्ट नहीं हुआ। जब स्वास्थ्य नष्ट हो जाये तो समझो कि कुछ हो गया और जब चरित्र नष्ट हो जाये तो समझो कि सब कुछ नष्ट हो गया। अतः आज देश के गिरते हुए नैतिक स्तर को उठाने के लिए बालकों का उच्च चरित्र बनना परमावश्यक है और यह तभी सम्भव है जबकि माता-पिता तथा प्रत्येक गुरु बालकों की इच्छा-शक्ति को दृढ़ करें, क्योंकि बिना दृढ़ इच्छा-शक्ति के उच्च चरित्र ही नहीं बन सकता।

□

विश्वविद्यालय के प्रांगन से-

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार
उप-कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

पिछले दिनों विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की छठी पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप देने के लिये गुरुकुल में आयी।

इस सन्दर्भ में जो प्रश्न उभर कर सामने आया वह यह था कि क्या गुरुकुल की कोई विशेषता है अथवा गुरुकुल भी अन्य विद्यालयों की तरह ही है जो बी० ए०, एम० ए० की परीक्षायें लेता है और डिग्रियां बांटता है? सौभाग्य से इस अवसर पर विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा महोदय डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार तथा गुरुकुल के पुराने स्नातक, धर्मयुग एवं नवनीत के भूतपूर्व सम्पादक और अब गुरुकुल के आचार्य प्रो० सत्यकाम विद्यालङ्कार भी उपस्थित थे।

कुलपति जी ने अपने स्वागत भाषण में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ८० वें दशक का कार्यक्रम उपस्थित करते हुए जोरदार शब्दों में कहा कि गुरुकुल सामान्य विश्वविद्यालयों की तरह नहीं है। गुरुकुल का एक विशेष लक्ष्य है। गुरुकुल के पास एक विशेष सन्देश है जो गुरुकुल ने न केवल राष्ट्र को अपितु सारे संसार को देना है। वह सन्देश है आध्यात्मिक मूल्यों का, विज्ञान का प्रसार और पाखण्ड का खण्डन अर्थात् श्रेयस् और प्रेयस् का संगम।

इसी उद्देश्य को लेकर सन् १९०० में स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल की स्थापना की थी।

महर्षि दयानन्द राष्ट्र को मजबूत बनाना चाहते थे। वह जानते थे कि देश तभी सशक्त होगा जब सभी देशवासी सशक्त, सबल, हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी-ओजस्वी होंगे। वह देश की निर्बल, असहाय असमर्थ जनता को बलवान् स्वावलम्बी, समर्थ बनाना चाहते थे। अतः जहां एक ओर उन्होंने समाज सुधार के कार्यक्रम पर बल दिया, वहां व्यक्तिगत सुधार पर भी उन्होंने यथेष्ट जोर दिया।

उन्होंने ब्रह्मचर्य की महिमा समझी और आजन्म ब्रह्मचर्य के कठिन व्रत का पालन किया। सिद्ध को प्रमाण क्या? तभी वह ब्रह्मचर्य पालन पर सदैव जोर दिया करते थे। आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करना सबके लिये सम्भव नहीं। इसलिये उन्होंने कहा पहले २५ वर्ष तक प्रत्येक युवक को और १६ वर्ष तक प्रत्येक कन्या को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। इस अवस्था के बाद ही शादी होनी चाहिये।

वह चारों ओर देख रहे थे, छोटी उमर की शादियों का अभिशाप, नर पंगुओं की संख्या में

वृद्धि, बच्चों के कच्चों की उत्पत्ति। इसका उन्होंने कड़ा विरोध किया।

आज भी अभी बाल विवाह बन्द नहीं हुवे। उनके शिष्य हरविलास शारदा ने कानून बनवाया कि लड़की की शादी १८ वर्ष से पहले और लड़कियों की १४ वर्ष से पहले नहीं होनी चाहिये। लेकिन जनमत ने इसे पूर्णतः स्वीकार नहीं किया। बाद में शादी की आयु पुरुषों के लिये २१ और लड़कियों के लिये १८ कर दी गई; किन्तु जनमत की तैयारी न होने के कारण यह अभी कोरे कागजी कानून ही हैं। हां, कानून का कुछ न कुछ असर तो होता ही है। लेकिन कानून को सफल करने हेतु भविष्यद्रष्टा, आदर्शवादी, अग्रगामी समुदाय को सचेष्ट होकर जनमत तैयार करना होता है।

स्वामी दयानन्द ने अपने कार्यक्रम को बढ़ाने हेतु आर्यसमाज को एक सक्रिय संस्था के रूप में जन्म दिया था। आर्यसमाज ने शुरु-शुरु में दयानन्द के कार्यक्रम को तेजी से आगे बढ़ाया। इसी हेतु स्वामी श्रद्धानन्द ने आज से ८४ वर्ष पूर्व गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की ताकि यहां से निकले हुये ओजस्वी स्नातक अच्छे ब्राह्मण, अच्छे क्षत्रिय और अच्छे वैश्य बने तथा देश के उद्धार में अपना योगदान दें। लेकिन विहंगम दृष्टि से देखा जाय तो जिस पौराणिकता, पाखण्ड और पोपलीला के विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने युद्धभेरी बजाई थी वह अभी भी देश में प्रचुर मात्रा में व्याप्त है। अतः उनके कार्यक्रम को गतिमान करने हेतु और अन्धकार के इन गढ़ों को मिटाने हेतु कृत संकल्प नवयुवक समुदाय की दयानन्द के वीर सैनिकों को बहुत आवश्यकता है और उनको तैयार करने का कार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का है।

एक अन्य बात जिस पर स्वामी जी ने जोर दिया था, वह थी स्त्री शिक्षा। आज भी देहात में चले जाइये या दलित वर्ग के लोगों को देखिये, स्त्री शिक्षा का कतई अभाव है। स्त्रियां सुशिक्षित होंगी तभी देश का उद्धार होगा। इसी हेतु १८९५ में जालन्धर में आर्य कन्या महाविद्यालय एवं १९२३ में देहरादून में कन्या गुरुकुल महाविद्यालय की स्थापना हुई थी।

बाल विवाह बन्द हो, स्त्री शिक्षा भरपूर हो, तो राष्ट्र क्यों न मजबूत होगा?

ब्रह्मचर्य के साथ ही ऋषि दयानन्द ने यम-नियम के पालन पर भी जोर दिया था। यम पांच है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह। नियम भी पांच है—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश प्रणिधान।

ठीक है इनको धारण करना आसान नहीं है। लेकिन लक्ष्य सुनिश्चित हो, ध्येय स्पष्ट हो तो साधक साधना और अभ्यास करते करते लक्ष्य की ओर अग्रसर होता ही है। इसमें तो दो राय हो नहीं सकतीं कि यही मार्ग सन्मार्ग है, सुपथ है, अन्य नहीं।

यही है गुरुकुल कांगड़ी का सन्देश जिसके प्रचार की देश विदेश में आवश्यकता है। इस सन्देश को देश विदेश में पहुँचाने हेतु हमें दुभाषिये ही नहीं त्रिभाषिये, चतुर्भाषिये कर्मठ विद्वानों की आवश्यकता है, जो देश की अन्य भाषाओं में, विदेशी भाषाओं में वेद के इस अमर सन्देश का प्रचार करें।

इसी सन्दर्भ में आचार्य सत्यकाम विद्यालङ्कार ने गुरुकुल को वैदिक संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने की योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी के सम्मुख रखी, जिसे उन्होंने बहुत पसन्द किया।

स्वामी दयानन्द ने १८७५ में उद्घोष किया था, सुराज्य कितना भी अच्छा क्यों न हो, स्वराज्य से अच्छा नहीं हो सकता। इसी उद्घोष को १८९६ में लोकमान्य तिलक ने दोहराया जब उन्होंने कहा, स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है—मैं इसे लेकर रहूँगा। बस इसके बाद ५० वर्ष तक भारत स्वतन्त्रता संग्राम में जूझ गया और इस महायुद्ध में हजारों वीरों ने अपना सर्वस्व बलिदान किया। उन्होंने खून दिया, स्वतन्त्रता देवी प्रसन्न हुई। १५ अगस्त १९४७ को देश में स्वराज्य स्थापित हुआ।

उसको मूर्त रूप देने हेतु भारत की जनता ने अपने लिये नया संविधान बनाया जिसके अधीन २६ जनवरी १९५० से भारत का प्रशासन कार्यरत है।

लेकिन यदि आज की पीढी के नवयुवकों से पूछा जाय कि स्वतन्त्रता प्राप्ति में उमके पूर्वजों ने क्या कुर्बानियाँ दीं क्या यातनायें भोगीं तो थोड़े बहुत को छोड़कर बहुत से तो शायद १० अमर शहीदों के नाम भी नहीं बतला सकते। इसी तरह २६ जनवरी का क्या महत्त्व है, इस प्रश्न का उत्तर भी बहुत लोग नहीं दे सकते।

इस कमी को दूर करने हेतु तथा भारत की स्वतन्त्रता एवं पुनर्जागरण के इतिहास को रचने हेतु गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय ने अपनी छठी योजना में लाजपत राय पीठ प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव उक्त समिति के समक्ष रखा। इस पर भी बह सहानुभूति से विचार करेंगे ऐसा प्रकट हुआ।

हम विजिटिंग कमेटी के सदस्यों के आभारी हैं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एवं विद्यालय की गतिविधियों का गहराई से अध्ययन किया तथा इन कमजोरियों एवं क्षमताओं का मूल्यांकन किया। उन्होंने हरिद्वार की शैक्षणिक आवश्यकताओं का भी जायजा लिया और आशा की जाती है कि उनकी सिफारिश गुरुकुल के विस्तार में बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

१९ मार्च ८४ को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस अवसर पर गोवर्धन ज्योति का विमोचन करते हुए महात्मा

आर्य भिक्षु जी ने कहा कि आचार्यों का परम कर्तव्य है कि वे बालक में गुणों की समृद्धि करें तथा अवगुणों को दूर करें, यही आचार्य गोवर्धन जी के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी। ज्ञातव्य है कि यह प्रतियोगिता प्रतिवर्ष संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर की ओर से आयोजित की जाती है। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा द्वितीय स्थान कन्या गुरुकुल कनखल ने प्राप्त किया।

इन दिनों आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी ने भी अंगड़ाई ली है। संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट की आर्थिक सहायता से आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी ने स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे, तीसरे एवं छठे समुल्लास के सरलीकृत एवं लघुकृत संस्करण प्रकाशित किये। इसी प्रकार उन्होंने व्यवहारभानु के सरलीकृत संस्करण का प्रकाशन किया। इसमें राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, तथा गुरु, शिष्य नागरिकों के परस्पर व्यवहार की मर्यादाओं का दिग्दर्शन किया है। इन तीनों पुस्तिकाओं का प्रकाशन इस आशा से किया गया है कि स्वामी जी के विचार हर घर तक पहुँचे। इसी ध्येय को लेकर स्वामी जी ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी का प्रयास प्रशंसनीय है और आशा है अब यह समाज नवचेतना की ओर अग्रसर होगा।

यह प्रसन्नता का विषय है कि पद्मश्री विनयचन्द्र मौद्गिल्य, प्राचार्य गन्धर्व महाविद्यालय नई दिल्ली जिनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल में ही हुई थी ने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को संगीत शिक्षा की ओर प्रेरित करने हेतु अपनी अमूल्य सेवायें गुरुकुल को प्रदान की हैं, इस शृंखला में उन्होंने गत सप्ताह तीन दिन का गुरुकुल में प्रवास किया तथा गुरुकुल के चुने हुये ब्रह्मचारियों को सस्वर वेदमन्त्र एवं अन्य गीत सिखाये।

यह भी प्रसन्नता का विषय है कि आचार्य सत्यकाम जी जिन्होंने ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया है को गुरुकुल की कार्यपरिषद् ने मानद प्रोफेसर के रूप में कार्य करने हेतु आमन्त्रित किया है और आर्य विद्या सभा ने भी उन्हें गुरुकुल विद्यालय के आचार्य पद पर नियुक्त कर दिया है। उनके आगमन से ब्रह्मचारियों की शिक्षा दीक्षा के कार्यक्रम को यथेष्ट बल मिला है।

इस वर्ष गुरुकुल विश्वविद्यालय ने उन्हें विद्यामार्तण्ड की मानद उपाधि से विभूषित किया है और संघड़ विद्या सभा जयपुर ने उन्हें आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार १९८४ से अलंकृत किया है।

□

राष्ट्रीय सेवा योजना वृतांत

(द्वितीय शिविर, १९८३-८४)

–डॉ० बी० डी० जोशी,
विभागाध्यक्ष, जन्तु विज्ञान
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

शिविर स्थल– पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम, जि० बिजनौर।
शिविर काल– दिनांक २२ दिसम्बर ८३ से ३१ दिसम्बर ८३ तक।

विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी रा० से० यो० का विशेष वार्षिक शिविर पुण्य भूमि, कांगड़ी ग्राम में लगाना निश्चित हुआ था। वस्तुत: मातृ ग्राम कांगड़ी अब गुरुकुल विश्वविद्यालय की रा० से० यो० ईकाई द्वारा वार्षिक एवं सामान्य कार्य कलापों के लिए एक अंगीकृत ग्राम है। इस कैम्प में भाग लेने वाले सदस्यों की संख्या निम्नवत् थी—

(१)	विज्ञान महाविद्यालक छात्र	सं०	४३
(२)	वेद तथा कला महावि०	,,	०४
(३)	स्थानीय युवक	,,	०६
(४)	अध्यापक गु० कां० विश्वविद्यालय		०१
		योग	५४

दिनांक २१-१२-८३ को डॉ० बी० डी० जोशी के नेतृत्व में रा० से० यो० के छात्रों का दल पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम पहुँचा इसी दिन सायंकाल प्रोग्राम को ओर्डीनेटर श्री वीरेन्द्र अरोड़ा जी भी व्यवस्था देखने हेतु वहां आए। २१ दिसम्बर ८३ को कैम्प स्थापित हुआ। २२-१२-८३ को छात्रों ने नियत कार्य-क्रमानुसार प्रात:काल से ही अपना कार्यक्रम आरम्भ कर दिया। छात्रों ने गंगा की धारा के ऊपर नदी के पत्थरों का अस्थायी मार्ग निर्माण किया और सायंकाल को छात्र जंगल में लकड़ी बिनने के लिये गये पर वहां पर पाया कि जंगल मुख्यत: खैर का है। अत: तब यह निश्चय किया गया कि लकड़ी लकड़हारों से ही खरीदी जाएगी। दिन भर छात्रों ने शिविर स्थल की सफाई अभियान सा चला दिया। सायंकाल को विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बी० के० हूजा, प्रो० एल० आर० शाह एवं श्री वीरेन्द्र अरोड़ा जी पधारे। श्री हूजा जी के सभापतित्व में ही एक छोटी सी गोष्ठी का आयोजन

गत दिनों पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम में आयोजित राष्ट्रीय सेवा योजना शिविर में लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ का आगमन हुआ–



बलराम जाखड़ कुलपति श्री हूजा जी से पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम विकास के विषय में जानकारी प्राप्त कर रहे हैं, साथ में डॉ० विजयशंकर, (अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग एव निदेशक, कांगड़ी ग्राम विकास योजना) तथा डॉ० बी० डी० जोशी (अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग)



बलराम जाखड़ छात्रों से व्यक्तिगत परिचय करते हुए साथ में डॉ० बी० डी० जोशी (प्रोग्राम ऑफिसर-राष्ट्रीय सेवा योजना)

किया गया। श्री बीरेन्द्र अरोड़ा ने प्रो० एल० आर० शाह भू० पू० निदेशक रा० से० यो०, भारत सरकार का छात्रों को परिचय दिया। गोष्ठी को प्रो० शाह एवं श्री हूजा जी ने भी सम्बोधित करते हुए छात्रों को कक्षाओं से बाहर की दुनियां विशेषत: ग्रामीण क्षेत्रों में आकर कार्य करने की प्रेरणा दी। अन्त में डॉ० बी० डी० जोशी ने अतिथियों का धन्यवाद किया।

२३-१२-८३ को शिविर का औपचारिक उद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ। प्रो० शाह मुख्य अतिथि ने समारोह का शुभारम्भ वैदिक हवन द्वारा किया। समारोह को प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा, डॉ० जबरसिंह सेंगर कुलसचिव, नजीबाबाद के बी० डी० ओ० श्री राव, डॉ० विजयशंकर अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान विभाग, छात्र प्रतिनिधि श्री मनोज कुमार, डॉ० बी० डी० जोशी, कुलपति श्री हूजा जी, आयुर्वेद महावि० के प्राचार्य डॉ० सुरेशचन्द्र शास्त्री एवं मान्य मुख्य अतिथि प्रो० शाह द्वारा सम्बोधित किया गया। प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा ने गुरुकुल में रा० से० यो० को स्थापित कराने में कुलपति जी एवं प्रो० शाह द्वारा की गयी प्रेरणाओं का उल्लेख किया। डॉ० बी० डी० जोशी ने शिविर के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। डॉ० शास्त्री ने छात्रों को शिविर के अलावा भी कार्य करते रहने की प्रेरणा दी। प्रो० शाह ने छात्रों को ग्राम्य पर्यावरण, वन संरक्षण एवं समाज सेवा के प्रति विशेष रूप से जागरूक रहने के लिए कहा। कुलपति जी ने मान्य मुख्य अतिथि को धन्यवाद दिया। समारोह के समस्त कार्यों का संचालन प्रो० बी० डी० जोशी द्वारा ही किया गया।

समारोह में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्राध्यापकगण, छात्रों, कांगड़ी ग्रामवासियों एवं जिला बिजनौर के अनेक अधिकारियों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। समारोह का अन्त वैदिक शान्ति पाठ के मन्त्रों द्वारा हुआ। अन्त में सभी आमन्त्रित एवं सम्मिलित जनता को जलपान कराया गया। दि० २३-१२-८३ को माननीय कुलपति श्री हूजा जी ने रात्रि में शिविर स्थल में ही रहने का प्रोग्राम बनाया। रात को कुलपति जी ने छात्रों के साथ ही मिलकर भोजन किया और तब रात्रि को छात्रों एवं ग्रामवासियों द्वारा मिल-जुलकर मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

दि० २४-१२-८३ को प्रात: दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होने के बाद श्री कुलपति जी के निर्देशन में छात्रों ने ग्राम कांगड़ी में सेवा योजना का कार्य प्रारम्भ किया। गांव के कुएं (जो बन कर पिछले दो सालों से अपने चारों ओर मिट्टी भर जाने और चबूतरा बनने की प्रतीक्षा में आकाश ताक रहा था) के चारों ओर भरान का कार्य शुरु किया। कुलपति जी ने स्वयं पत्थर उठाकर खाली जगह भर कर कार्य का शुभारम्भ किया। छात्रों ने मिट्टी खोदकर बुग्गियों में मिट्टी ढो-ढो कर कुएं के चारो ओर गड्ढ को भरना आरम्भ किया। पूर्वाह्न में ही विश्वविद्यालय से डॉ० जबरसिंह सैंगर, प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा, श्री देशराज जी (स० मुख्याधिष्ठाता) भी कार्य स्थल आ पहुँचे। ग्राम विकास अधिकारी श्री

शराफत अली ने ग्रामवासियों का वांछित सहयोग लेने की पूर्ण सहायता की। मध्याह्न में भोजन के समय जिला बिजनौर के विकास अधिकारी एवं बी० डी० ओ० श्री राव भी आए। उनका भी भोजन द्वारा स्वागत किया गया। कैम्प में दिये जा रहे भोजन व्यवस्था आदि से सभी बड़े प्रभावित रहे। सायं को प्रो० वीरेन्द्र अरोडा शिविर में ही रात भर रुकने का प्रोग्राम बना चुके थे कि रात ८ बजे उनके घर से सन्देश आया कि उनकी पूज्य सास स्वर्ग–सिधार गयी हैं। अतः उन्हें तुरन्त वापस आना पड़ा। सायंकाल को कुलपति जी ने छात्रों के साथ बैठकर एक विचारगोष्ठी का आयोजन करवाया। छात्रों से अनेक विषयों पर सीधा विचार विमर्श किया गया और कुलपति जी ने स्व धर्म क्या है ? हिन्दू धर्म क्या है ? छात्रों के क्या-क्या कर्त्तव्य हैं, जैसे गम्भीर विषयों पर छात्रों को बड़े रोचक ढंग से और सरल भाषा में उद्‌बोधित किया। रात्रि भोजन के बाद ही वर्षा प्रारम्भ हो गई। मौसम अत्यन्त शीत और कठिन हो गया।

२५-१२-८३ को प्रातःकाल से ही वर्षा होती रही फिर भी छात्रों ने प्रातःकालीन व्यायाम आदि किया और फिर कुलपति जी के साथ बैठकर विचार गोष्ठी की। मध्याह्न में वर्षा में ही कुलपति जी गुरुकुल को प्रस्थान कर गये। अपराह्न में कुछ छात्रों ने ग्राम कांगड़ी में जाकर सामाजिक सर्वेक्षण का कार्य किया। श्री कुलपति जी ने उसी दिन विश्वविद्यालय के ही अन्य साथी प्रवक्ता श्री कौशल कुमार (रसायन शास्त्र) को भी शिविर स्थल आने की प्रेरणा दी और श्री कौशल जी वहां २५ एवं २६ दिसम्बर को रहे।

२६-१२-८३ का यह दिन बहुत महत्त्वपूर्ण था। दोपहर तक छात्रों ने गुरुकुल कांगड़ी में नियमित कार्य किया। मार्ग ठीक किये। गलियों में झाड़ू लगाया और कुएं पर भी कार्य किया। अपराह्न में ३-३० पर श्री बलराम जी जाखड़, अध्यक्ष लोकसभा, शिविर स्थल में आए। उनके साथ हरिद्वार एवं बिजनौर क्षेत्रों के अनेक जिला अधिकारी भी शिविर स्थल तक आए। श्री जाखड़ शिविर स्थल के चुनाव एवं वहां की सुन्दर व्यवस्था से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने छात्रों को विशेषतः शहरी छात्रों को ग्राम्याचलों में जाकर देश की समस्याओं को समझाने और सहयोग देने के लिये प्रेरणा दी। श्री जाखड़ की सहज मृदुलता से छात्र भी बहुत प्रभावित हुए। श्री जाखड़ ने प्रत्येक छात्रों का व्यक्तिगत परिचय लिया। श्री जाखड़ का पहले से ही ग्राम कांगड़ी में आने का कोई पूर्व निर्धारित कार्यक्रम नहीं था। हमारे कुलपति जी की ही उनको यह अत्यन्त शुभ प्रेरणा थी कि वह भी ऋषि श्रद्धानन्द जी की तपस्थली तक आए।

२७-१२-८३ को छात्रों ने तसलों और बुग्गियों मे रेत और मिट्टी ढोई और कुएं के चारों ओर भराई के कार्य को जारी रखा। सायंकाल को छात्रों ने ग्राम में घर-घर जाकर स्वास्थ्य एवं सामाजिक सर्वेक्षण का कार्यक्रम किया।

२८-१२-८३ शिविर एवं कांगड़ी ग्राम के इतिहास का एक विशेष दिन था। उ० प्र० सरकार के कृषि उत्पादन आयुक्त (ए० पी० सी०) श्री वेंकट नारायनन महोदय प्रातः ९-३० बजे शिविर स्थल में पधारे। कुलपति जी ने स्वयं घूम-घूम कर उन्हें शिविर स्थल का पूरा परिचय एवं इतिहास बताया। श्री नारायनन भी स्थल के चुनाव से बहुत प्रभावित हुए। उनके साथ बिजनौर जनपद के जिला अधिकारी, एस.डी.एम., बी.डीओ., विकास अधिकारी आदि अनेक प्रमुख अधिकारीगण भी पहुँचे थे। इसी दिन एक छोटी सी सभा का आयोजन किया गया। डॉ० जोशी ने रा० से० यो० द्वारा किये गये कार्यों पर प्रकाश डाला। इस दिन की व्यवस्था में डा० विजय शंकर जी एवं डॉ० कश्मीरसिंह भिण्डर का बड़ा योगदान रहा। डॉ० श्यामनारायणसिंह जी ने भी फोटोग्राफी आदि में अपना विशिष्ट योगदान दिया। सभी अतिथियों का सूक्ष्म जलपान से स्वागत किया गया। तत्पश्चात् छात्रों सहित सभी लोग ग्राम कांगड़ी के कार्य स्थलों तक गए। वहाँ ए. पी. सी. महोदय ने पूरे गाँव का भ्रमण किया और गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एवं रा०से०यो० के सहयोग से हो रहे कार्यों की सराहना की। गांव के प्राइमरी स्कूल के प्रांगण में एक सभा की गयी और डा० विजय शंकर जी ने सभा को संबोधित किया। इस कार्यक्रम के उपरान्त छात्रों ने गांव के अनेक कुओं के चारों ओर सफाई की। हौदियों को भी साफ किया और प्रयोग के योग्य बनाया। गांव में नालियों का भी निर्माण किया गया।

२९-१२-८३ को छात्रों का अधिकांश अवकाश रहा तथा छात्रों ने गांव में जाकर सामाजिक सर्वेक्षण कार्य किया।

३०-१२-८३ को छात्रों ने कुएं के चारों ओर की सफाई तथा अन्य कार्यों को अन्तिम रूप दिया और पूर्ण रूप से कुएं को भी प्रयोग योग्य बना दिया अब उसके ऊपर छत लगना और चबूतरे का पक्का करने का कार्य शेष रह गया है। ३०-१२-८३ को छात्रों ने लगभग २० बुग्गियां पत्थर नदी से ढोये और कुएं के चारों और भरे। उक्त तिथि को ही विज्ञान महाविद्यालय के दो प्राध्यापक प्रो० ग्रोवर एवं प्रो० गुलाटी जी भी दिन भर छात्रों के साथ रहें।

३१-१२-८३ को शिविर का अन्तिम दिन था। प्रातः १० बजे से ग्राम कांगडी की पाठशाला के प्रांगण में समापन समारोह प्रारम्भ हुआ। मुख्य अतिथि श्री दर्शनसिंह जी (आई० ए० एस०) बिजनौर के जिलाधीश महोदय थे। सभा का संचालन डा० विजय शंकर जी ने किया। समारोह का शुभारम्भ वैदिक हवन द्वारा हुआ। तत्पश्चात् माल्यार्पण द्वारा जिलाधीश महोदय का स्वागत किया। डा० जोशी ने शिविर में किए गए कार्यों का उल्लेख किया। नजीबाबाद के परगनाधिकारी श्री त्यागी, ग्राम सेवक प्रशिक्षण के प्राचार्य श्री श्रीवास्तव जीं, कुलपति जी, डा० काश्मीरसिंह जी, डा० सेंगर (कुलसचिव जी) ने सभा को सम्बोधित किया। जिलाधिकारी श्री सिंह ने कुलपति जी के प्रति अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि देश को आज ऐसे ही कर्मठ और अत्यन्त

क्रियाशील बुजुर्गों को आवश्यकता है जिनके नेतृत्व में हम लोग बढ़े। उन्होंने छात्रों से कहा कि वह अपने बुजुर्गों एवं गुरुजनों का सम्मान करें। ग्रामवासियों को उन्होंने सजग होकर सहयोग देने को कहा। उन्होंने वायदा किया है कि वह कुलपति जी के आशीर्वाद को लेकर कांगड़ी ग्राम की हर योजना को अपनी पूरी-२ सहायता देगें। अन्त में डा० काश्मीरसिंह जी ने सभी के प्रति धन्यवाद किया। शान्ति पाठ और जलपान के बाद समारोह समाप्त हुआ। दोपहर का भोजन होते-२ दो बज चुके थे। तब छात्रों ने ट्रेक्टर ट्राली पर वापसी हेतु अपना सामान लादा और मातृ-भूमि कांगड़ी की पुण्य स्थली को नमन कर शिविर समाप्त कर लौट आये।

उपसंहार-

इस सत्र का यह शिविर अत्यन्त सफल रहा। शिविरार्थी छात्रों को राष्ट्र के अनेक उच्चतम एवं सफल प्रशमनिक एवं राजनैतिक व्यक्तियों को निकट से देखने सुनने का अवसर मिला। ग्राम की की समस्याओं को छात्रों ने करीद से समझा और अपने सहयोग से कुएं, चबूतरे, नालियों को अन्तिम रूप दिया। सफाई की गयी। सर्वेक्षण से ग्राम्य समस्याओं और ग्राम कांगड़ी की बढ़ती सम्पन्नता का सबको परिचय दिया। इस सबके प्रेरणा स्रोत निश्चय ही हमारे कुलपति श्री हूजा जी हैं।

आभार-

शिविर में जाना तो प्रोग्राम अधिकारी का कर्त्तव्य ही होता है पर शिविर को सफलता का श्रेय मेरा अपना नहीं अपितु मेरे शिविरार्थियों के उत्साह पूर्ण सहयोग एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्व—विद्यालय के प्रशासनिक अधिकारियों एवं अनेक सहयोगी प्राध्यापकों को जाता है। मुख्यत: मैं, कुलपति जी को, कुलसचिव जी, वित्ताधिकारी श्री बी० एम० थापर, विज्ञान म० वि० के प्राचार्य श्री सुरेशचन्द्र त्यागी उप-कुलसचिव श्री श्यामनारायणसिंह जी, क्रीड़ाध्यक्ष श्री ओ० पी० मिश्र, वनस्पति विज्ञान के विभागाध्यक्ष डा० विजय शंकर जी, कैप्टन की देशराज जी, डा० काश्मीरसिंह जो, प्रो० ग्रोवर जी, प्रो० गुलाटी जी, प्रो० कौशल कुमार जी एवं श्री करतारसिंह जी को अपने हार्दिक आभार प्रेषित करता हूं। इन सबके अमूल्य सहयोग के बिना मैं सफल न होता। अन्त में अपने प्रोग्राम को ओर्डोनेटर प्रो० वीरेन्द्र अरोडा के प्रति स्नेह आभार व्यक्त करता हूं जो हमेशा की तरह बराबर मेरा साथ देते रहे। हमें और हमारे सभी छात्रों एवं रा० से० यो० के शिविर से संबन्धित सभी अधिकारियों को दु:ख है कि उन्हें परिवार के संबन्धी की आकस्मिक निधन का शोक सहन करना पड़ा और फल स्वरूप वह शिविर के अंतिम दिनों में साथ न रह सके। रा० से० यो० के सदस्यों की हार्दिक सवेदना उनके साथ है।

ओ३म्—शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!! □

गतांक से आगे

ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी

डॉ० रामेश्वर दयाल गुप्त

किसी ज्ञान के संचय को ईश्वरीय कहा जा सके उसके लिए उसमें निम्न विशेषताएँ होनी चाहियें—

१– सृष्टि के प्रारम्भ से ही वह ज्ञान होना चाहिये क्योंकि उसकी आवश्यकता हर समय है। मनुष्य जाति उसी से प्रेरणा लेती है।

२– उसमें इतिहास न हो अर्थात् किसी काल विशेष के सत्य को ही स्थान नहीं वरन् त्रिकाल व्यापी सत्य का स्थान हो।

३– किसी देश विशेष से लगाव या उसका वर्णन न हो।

४– उनकी भाषा प्राकृत हो बनावटी नहीं।

५– उसमें सच्चा साहित्य हो तथा पूर्ण ज्ञान हो और वह मनुष्य जाति का उन्नायक हो।

६– उसमें पूर्वापर विरोध न हो।

७– उसमें सृष्टिगुण के विरुद्ध असंगतियाँ न हों।

८– उसमें प्रक्षेप न हों।

९– उसमें पुनरुक्ति न हो।

१०– उसकी अन्त: साक्षी हो।

११– आप्त जनों ने उसे ऐसा माना हो।

चूंकि आदि मानव अमैथुनी सृष्टि से बना था उसमें संस्कार (अन्य ज्ञान) नहीं था, उसके पथ प्रदर्शन के लिए वह तभी से होना चाहिए जब से आदि मानव पृथ्वी तल पर अवतरित हुआ हो।

सृष्टि के साथ नियम शास्त्र की आवश्यकता–

जिस प्रकार भूगोल और भूमि का चित्र भूमि के प्रत्येक भाग को समझने के लिए आवश्यक है उसी प्रकार सृष्टि रूपी चित्र के साथ वेद रूपी सृष्टि नियम शास्त्र हैं। जगत् निवासियों के जीवनों को ऊंचा बनाने वाले नियम भी हों जिन से न केवल जगत् की जानकारी हो, अपितु जगत् को अच्छा और शान्तिप्रद बनाने की मर्यादाओं का भी ज्ञान हो।

सम्मति

पुस्तक का नाम :—गोवर्धन ज्योति चतुर्थ रश्मि (दयानन्द का राजनैतिक दर्शन)
प्रस्तुत कर्ता :—श्री बलभद्र कुमार हूजा
प्रकाशक का नाम :—आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार, प्रधान आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार। मूल्य—श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय

इस पुस्तिका में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में राज-धर्म के बारे में महर्षि के उपदेश अथवा व्याख्यान को संक्षेप में संकलित किया गया है जिसका श्रेय गुरुकुल काँगड़ी के वर्तमान कुलपति और जयपुर की संस्था संघड़ विद्या सभा के अध्यक्ष श्री बलभद्र कुमार हूजा को है। जैसा कि सब जानते हैं कि राजस्थान की रंगीली वीरभूमि महर्षि दयानन्द के अन्तिम संघर्षमय जीवन की रंगभूमि रही थी। वो एक देशी राज्य से दूसरे देशी राज्य, एक घराने से दूसरे घराने, एक नगर से दूसरे नगर आते जाते रहे और अपने प्रवचनों तथा व्याख्यानों से उन्होंने सैंकड़ों—हजारों लोगों को अनुगृहीत किया। स्वाभाविक ही था कि राजा-महाराजाओं के सम्पर्क में आने के कारण और उस समय समस्त राजाओं के दरबार में, राजमहल में जो वातावरण उन्होंने देखा उसके बारे में वे अपनी अनुभूतियों को किसी न किसी प्रकार से अवश्य ही प्रकाश में लाते।

दयानन्द के विचारों के स्रोत तो हमेशा ही रहे हैं इसलिए राज—धर्म की शिक्षा—दीक्षा देने के बारे में भी महर्षि दयानन्द ने वेदों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों की ही शरण ली और वहीं से ही प्रेरणा पाकर उन्होंने अपने उस समय के राजाओं के सामने उपदेश प्रस्तुत किये। इस प्रकार यदि हम देखें तो सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में संकलित वेद—वाणी तथा मनुस्मृति या अन्य ग्रन्थों की रचनाओं के द्वारा हमें प्राचीन युग के शासन की शैलियों, पद्धतियों और विचारधाराओं का परिचय तो मिलता ही है लेकिन साथ ही हमें ये अवसर भी मिलता है कि हम यह जानकारी प्राप्त कर सकें कि अपने जीवन काल में महर्षि दयानन्द ने समकालीन समाज और शासन में क्या कम—जोरियां अथवा विसंगतियां देखीं जिन्हें सुधारने या दूर करने के लिए उन्होंने राजा— महाराजाओं को प्राचीन आर्य युग की परम्पराओं और शिक्षाओं की याद दिलाई।

दयानन्द ने राज—धर्म की व्याख्या करते हुए इस बात पर काफी जोर दिया कि राजा को उस समय की सभा अथवा प्रजा के आधीन रहना चाहिए और सभा और प्रजा की मनोतियों या मान्यताओं की

ओर पूरा ध्यान देना चाहिये। राजा अथवा शासन न्याय का पालन करे, प्रजा का रक्षक हो। धर्म और काम की सिद्धि को बढ़ाये, दुखी और आपत् ग्रस्त पुरुषों की सहायता करे इत्यादि। इन बातों की ओर जब महर्षि दयानन्द ने ध्यान दिलाया तो ऐसा लगता है कि शायद उन्हें अपने समकालीन समाज और शासन प्रणाली में अपने राज अथवा अच्छे शासन के उपरोक्त गुणों की कमियां अखरती थीं। शायद यही उनकी मान्यता भी थी इसलिए उन्होंने प्राचीन वेद ग्रन्थों इत्यादि से ये शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त की और राजा या शासक पक्ष को समझाने को कोशिश की। राजा के मन्त्री कैसे हों, इसके बारे में भी महर्षि ने काफी विस्तार से लिखा और मनु-स्मृति के कुछ अंशों का विश्लेषण किया।

यदि हम महर्षि दयानन्द को केवल एक माध्यम के रूप में लें जिनके द्वारा प्राचीन आर्य काल के शासन के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों की गत शताब्दी के अन्तिम अर्द्ध में पुनरावृत्ति की गयी थी तो शायद हमें इस दिशा में उनको विशेष देन का अच्छा-खासा आभास मिल सकता है। दूसरे शब्दों में यद्यपि दयानन्द सरस्वती न तो राजनीतिज्ञ थे, न राजनीति के शास्त्री; लेकिन उनके मन में नवीन भारत और विशेष रूप से देशी राज्यों के विकास और भविष्य तथा लोक कल्याण पर आधारित शासन पद्धति की जो कुछ कल्पनाएं थीं वो इस समुल्लास में उभरकर सामने आती हैं। अनेक विषयों पर उनके उपदेश और शिक्षाप्रद मत आज भी अनमोल हैं और हमारे आज के शासकों का दिशा बोध करा सकते हैं। परोपकार, प्रजा की सेवा और रक्षा तथा प्रजा के प्रति उत्तरदायी होने के राजकीय कर्त्तव्यों की याद दिलाने के अतिरिक्त महर्षि दयानन्द को इस बात का भी श्रेय मिलता है कि उन्होंने स्वदेश में "स्वराज्य" और "सुराज्य" दोनों ही के सिद्धान्तों का प्रतिपादन अथवा पुनः स्थापन सबसे पहले किया।

आशा है यह प्रयास जनसाधारण को स्वामी दयानन्द के विचारों से अवगत करने में महत्त्व-पूर्ण योगदान देगा। कार्य महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय है इस प्रकार की छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के माध्यम से स्वामी जी के विचारों को आज के समाज में प्रचार करने की महती आवश्यकता है।

—भूपेन्द्र हूजा

पुस्तक के सम्बन्ध में

पुस्तक का नाम—वर्ड पर्सपेक्टिव ऑन स्वामी दयानन्द सरस्वती

लेखक का नाम—डॉ० गंगा राम गर्ग

सप्रेम नमस्ते।

प्रियवर, डॉ० गंगाराम जी !

आजकल मैं आपकी लिखी पुस्तक Wold Perspectiyes on Swami Dayananda Saraswati पढ़ रहा हूं। आपने जो अगाध परिश्रम किया है और न जाने कहां-कहां से संग्रह किया है, वह आर्य समाज की ही नहीं, ऋषि दयानन्द के समय के इतिहास की मूर्त झांकी है। आर्य समाजी अपने व्याख्यानों में जो सुने-सुनाये और रटे-रटाये उद्धरण दिया करते हैं, उन सबकी ही नहीं उससे अधिक की प्रामाणिकता आपके इस ग्रन्थ में मिल जाती है। ऐसा ग्रन्थ तैयार करने में आप सचमुच धन्यवाद के पात्र हैं।

आपका

सत्यव्रत

W–७७ A, ग्रेटर कैलाश (१)

नई दिल्ली—४८

२०-२-१९८४

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम—"वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त"

लेखक का नाम—आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

प्रकाशक का नाम—मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

मूल्य —तीन खण्डों में पूरा सेट २४० रु०

वेद भारतीय धर्म एवं संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थ हैं। सम्पूर्ण चिन्तन विशेष रूप से 'भारतीय चिन्तन' का आधार वेद ही रहे हैं। ज्ञान के आगार वेदों में मानव के लिए कल्याण प्रदान करने वाले आध्यात्मिक एवं भौतिक तत्त्वों का समावेश भी हुआ है। वस्तुत: वेद मात्र आध्यात्मिक ही संदेश नहीं देते अपितु सामाजिक विज्ञान के भौतिक तत्त्वों की ओर भी संकेत करते हैं। यद्यपि वेदों का विविध दृष्टि कोणों से भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अध्ययन एवं विश्लेषण हुआ है तथा हो रहा है तथापि आज के इस वैज्ञानिक युग में वेदों में सामाजिक विज्ञानों की दृष्टि से भी वेदों के अध्ययन की महती आवश्यकता है। राजनीति इस लोकतांत्रिक युग में मानव जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति वेदों के उद्‌भट विद्वान् एवं मर्मज्ञ आचार्य प्रियव्रत जी ने 'वेदों में वर्णित राजनीतिक सिद्धान्त' नामक इस मौलिक ग्रन्थ का सृजन करके वैदिक अध्ययन की दिशा में एक नयी कड़ी को जोड़ा है। आचार्य जी ने इस ग्रन्थ में वेदों में वर्णित राजनीतिक सिद्धान्तों को मार्मिक एवं मौलिक रूप में पाठकों के सामने रखा है। प्रयास स्तुत्य एवं अनुकरणोय है।

इस ग्रन्थ को तीन खण्डों में विभक्त किया गया है—प्रथम खण्ड-संविधान काण्ड, द्वितीय-अभ्युदय काण्ड, तृतीय-प्रतिरक्षा काण्ड। प्रथम खण्ड ७४४ पृष्ठों में लिखा गया है जिसमें २४ अध्याय हैं। तथा राज्य संस्था का विकास, मातृभूमि की भावना राजा का चुनाव, उसका राज्यकाल, राष्ट्रीयता, स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति मन्त्रिमण्डल, न्याय-विभाग, राज्याभिषेक आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर वेदों के परिप्रेक्ष्य में चिन्तन किया है। संक्षेप में यह खण्ड मांडलिक राज्यों के निर्माण से लेकर चक्रवर्ती राज्य के निर्माण के विषय में वेद के विचारों का प्रतिपादन करता है। द्वितीय खण्ड लगभग ५०० पृष्ठों में विस्तार को प्राप्त हुआ है। इस खण्ड को २६ अध्यायों में विभक्त करके वेद विषयक कृषि, नहरें, गोपालन, पशुपालन, सड़कें, पुल, व्यापार, उद्योग-धन्धे, शिल्पकला, स्वास्थ्य, शिक्षा, विवाह आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार किया है। संक्षेप में इस खण्ड में प्रजा किस प्रकार

अपने जीवन को सुखी एवं समृद्धिशाली बनाये, इस विषय में वेद के विचारों को प्रतिपादित किया गया है। तृतीय खण्ड २५६ पृष्ठों में लिखा गया है। इस खण्ड में राज्य के महत्त्वपूर्ण अंग रक्षा विभाग—सेनाओं के संगठन, संचालन, शस्त्र-अस्त्र एवं युद्धनीति आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर २४ अध्यायों में वेद प्रतिपादित विचारों को प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य जी का यह प्रयास एक दो वर्ष का नहीं अपितु लगभग ४८ वर्षों के कठिन परिश्रम का फल है। वेदों में स्थान-स्थान पर सूत्र रूप में वर्णित राजनीति-विज्ञान के तत्वों का विश्लेषण करके इस मौलिक ग्रन्थ की रचना की गई है। यह ग्रन्थ वेदों के एवं राजनीति के प्रत्येक अध्येता के लिये संग्रहणीय है। कवर पृष्ठ, जिल्द तथा कागज भी अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है।

-राकेश शास्त्री

□

७५ वर्ष पूर्व गुरुकुल वृत्तांत—

स्वामी श्रद्धानन्द जी की लेखनी से

प्रस्तुतकर्ता—जगदीश प्रसाद विद्यालङ्कार

नये ब्रह्मचारियों के चुनाव के लिये निम्नलिखित नियम स्थिर कर दिये गये हैं जिन महाशयों के पास गुरुकुल कार्यालय से पत्र न भी पहुँचे और वे पहिले किसी बालक के प्रवेशार्थ प्रार्थना पत्र भेज चुके हों, तो उनको इन्हीं नियमों के अनुकूल कार्यवाही करनी चाहिये।

१. सब प्रार्थियों को अपने बालकों को साथ लेकर गुरुकुल भूमि में २४ से २७ दिसम्बर तक पहुँच जाना चाहिये। २४ दिसम्बर से प्रथम यहां उनके आराम का कोई प्रबन्ध न होगा और २७ दिसम्बर के पश्चात् आये हुये बालक का चुनाव में सम्मिलित होने का कोई अधिकार ही न होगा।

२. जिन बालकों को किसी शारीरिक तथा मानसिक त्रुटि के कारण अस्वीकार किया जावेगा उनको फिर कोई आशा न रखनी चाहिये, किन्तु जो बालक केवल मुकाबिले में अस्वीकार किये जावेंगे उनके लिये मुलतान के शाखा गुरुकुल में लिये जाने की आशा हो सकती है शाखा गुरुकुल मुलतान का

निर्वाचन मास जनवरी के अंतिम सप्ताह में या उसके लगभग होगा। ३. २८ दिसम्बर से बालकों की परीक्षा निर्वाचन उपसभा आरम्भ करेंगी और ३० दिसम्बर तक निर्वाचन समाप्त हो जायेगा। ४. जो बालक प्रवेशार्थ चुने जायेंगे, यदि उनकी पढ़ाई के लिये १५०० नहीं दिया गया, उनके संरक्षकों को ४० रू० पेशगी तथा एक मास का शुल्क ३१ दिसम्बर तक देकर लौटने की आज्ञा होगी ५. जो संरक्षक १५०० रू० देने को उद्यत हों उनको रुपया अपने साथ लाना चाहिये। ६. प्रत्येक संरक्षक को एक दरी, दो श्वेत चादरें तथा ओढ़ने की रजाई अपने बालक के लिये साथ लानी चाहिये अन्य नये वस्त्र सब यहां से दिये जायेगें। वेदारम्भ के समय ओढ़ने-बिछाने के सब वस्त्र भी नए दिये जायेंगे। ७. इस वर्ष सभा ने निश्चय कर दिया है कि ३० से अधिक एक छात्र पन्द्रह सौ रूपये एकदम दाखिल होने पर ही लिये जायेगें आशा है कि सर्व महाशय इन नियमों को ध्यान में रखकर आने का विचार करेंगें।

गुरुकुल का सातवां वार्षिकोत्सव:—फाल्गुन शुक्ला एकादशी अर्थात् २ मार्च सं० १९०९ ई० से आरम्भ होकर ७ मार्च अर्थात् पूर्णिमा तक रहेगा २, ३. ४. मार्च को साहित्य परिषद् का वार्षिकोत्सव होगा जिसके साथ ही सरस्वती सम्मेलन का उत्सव मनाया जावेगा। इस वर्ष दो निबन्ध संस्कृत में तथा एक निबन्ध आर्य भाषा में पढ़े जायेंगे निबन्ध कर्ताओं के नाम तथा विषयों की सूचना भी ज्ञात होने पर पहिले से ही मुद्रित की जायगी। ५-६ मार्च को व्याख्यानादि होंगे और ७ मार्च को वेदारम्भ संस्कार की विधि की जायेगी। गुरुकुल की कार्यकारिणी सभा (पंजाब आर्य प्रतिनिधि की अंतरंग सभा) ने यदि इस वर्ष भी किराये की रियायत लेनी आवश्यक समझी और ले ली तो सर्व साधारण को उस समय समाचार पत्रों द्वारा सूचित किया जायेगा।

साहित्य परिषद् का ऊपर कथन आ चुका है इसलिये यहां यह बतलाने की आवश्यकता है कि इस परिषद् को २५ ज्येष्ठ १९६५ के दिन स्थापन किया गया था। इस का उद्देश्य "ब्रह्मचारियों को विविध विषयों पर निबन्ध लिखना सिखाना उनकी ग्रन्थावलोकन में विशेष प्रवृत्ति कराना। उनकी समालोचना शक्ति को उत्तेजित करना और अन्य विद्वानों के लिखे हुए निबन्धों से ब्रह्मचारियों तथा अन्य सभ्यों को लाभ पहुँचाया जाये" इस परिषद् का साधारण अधिवेशन हर पन्द्रहवें दिन होता है। आरम्भ में एक निबन्ध पढ़ा जाता हैं। निबन्ध आर्य भाषा तथा संस्कृत दो में पढ़े जाते है। निबन्ध पढ़े जाने के पश्चात् उस पर वाद-विवाद के अनन्तर निबन्ध लेखक अपना प्रत्युत्तर देता है। अन्त में सभापति के वक्तव्य के साथ सभा समाप्त होती है। अधिवेशन में प्रत्येक महाशय उपस्थित हो सकते हैं, परन्तु परिषद् से सभासद बनने के लिये दो रुपये चन्दा निश्चित हुआ है। अब तक सभा के ३२ सभासद हुये हैं जिन में गुरुकुल के एतद् योग्य ब्रह्मचारी गुरुकुल से कई अध्यापक तथा अधिष्ठाता और कई अन्य बाहर के विद्वान् भी सम्मिलित हैं। अब तक इस परिषद् के अधिवेशनों में कई निबन्ध पढ़े जा चुके हैं। जिनके विषय तथा अध्येता निम्नलिखित हैं।

(सद्धर्म प्रचारक ४ मार्ग शीर्ष सं० १९६५ ता० १८ नवम्बर १९०८)

गुरुकुल-समाचार

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव का संक्षिप्त विवरण

यजुर्वेद पारायण यज्ञ

१० अप्रैल १९८४ से यजुर्वेद पारायण यज्ञ प्रारम्भ हुआ। यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार रहे। यज्ञ के संचालन का कार्य डॉ० जयदेव वेदालंकार (दर्शन विभाग) ने किया तथा ब्र० पीताम्बर दत्त शर्मा, ब्र० सूर्यप्रकाश पाठक, ब्र० पुण्य प्रसाद और ब्र० गुरु प्रसाद ने वेदपाठ किया।

ध्वजारोहण

१३ अप्रैल १९८४ को वार्षिकोत्सव का मुख्य कार्यक्रम मान्य कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी (अध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब) के ध्वजारोहण से प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर मान्य कुलाधिपति ने सम्बोधित करते हुए कहा कि हमें अपनी संस्कृति और वैदिक परम्परा तथा गुरुकुल के आदर्शों की रक्षा करने का व्रत लेना चाहिए।

वेद सम्मेलन

१३ अप्रैल को मध्याह्न ३-३० बजे डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय) जी की अध्यक्षता में वेदसम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन पूर्व कुलपति आचार्य प्रियव्रत 'वेदमार्तण्ड' ने किया। इसमें श्री वीरेन्द्र शास्त्री, डॉ० सत्यव्रत 'राजेश', पं० भगवतदत्त वेदालंकार, डॉ० रामनाथ वेदालंकार, सरदारी लाल वर्मा तथा ब्र० पीताम्बर आदि वक्ताओं ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण दिए। सम्मेलन का संयोजन डॉ० जयदेव वेदालंकार ने किया और कहा कि वेद की उदात्त शिक्षाएं ही वर्तमान समय में मानव मात्र की रक्षा कर सकती हैं।

१३ अप्रैल की रात्रि के कार्यक्रम में प्रो० रत्नसिंह ने भारतीय संस्कृति पर सारगर्भित भाषण दिया तथा स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने वेद के अध्ययन पर बल दिया। इसका संयोजन डा० सत्यव्रत 'राजेश' (वेद विभाग) ने किया।

दीक्षान्त-समारोह

१४ अप्रैल १९८४ को प्रातः १० बजे कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता में दीक्षान्त समारोह सम्पन्न हुआ। मान्य कुलपति ने अपने स्वागत भाषण में विश्वविद्यालय की प्रगति से परिचय

कराया तथा नव स्नातकों के लिए आशी: वचन कहे। इसके मुख्य अतिथि स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने नव स्नातकों को सम्बोधित करते हुए अपने दीक्षान्त भाषण में कहा कि आपकी शिक्षा-दीक्षा आर्य जगत् के सर्वश्रेष्ठ शिक्षा संस्थान में हुई है। इसलिए आप दयानन्द के सपनों को पूरा करें, राष्ट्रवादी बनें तथा राष्ट्रीय संस्थानों में यशस्वी स्थान प्राप्त करें।

इसके अतिरिक्त स्वामी ओमानन्द सरस्वती, कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र, आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार, पं० सत्यकाम विद्यालंकार आदि ने नव स्नातकों को आशीर्वाद दिया। इसका सयोजन डा० जबर सिंह सेंगर (कुल सचिव) तथा सह संयोजन डा० श्याम नारायण सिंह (उप कुल सचिव) ने किया।

राष्ट्रीय-सम्मेलन

१४ अप्रैल मध्याह्न ३-३० बजे मान्य कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय एकता सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन प्रो० रत्नसिंह ने किया इसमें डॉ० रामचन्द्र, हैदराबाद. डॉ० कृष्णदेव नेपाल, डॉ० सत्यव्रत 'राजेश' (वेद विभाग) तथा ब्र० पीताम्बर शर्मा आदि वक्ताओं ने अपने सारगर्भित भाषण किए।

अपने अध्यक्षीय भाषण में मान्य कुलाधिपति जी ने कहा कि राष्ट्रीय एकता इस समय देश की ज्वलन्त समस्या के रूप में हमारे सामने है। आपने पञ्जाब समस्या का विस्तृत विवरण देते हुए उसके समाधान में अपने अनेक सुझाव दिए और सरकार से मांग की कि पञ्जाब समस्या का तुरन्त समाधान किया जाए अन्यथा यह रोग सभी सीमा प्रान्तों में फैल जाएगा।

सम्मेलन के संयोजक डॉ० जयदेव वेदालंकार ने प्रस्ताव रखा जिसमें सरकार से मांग की गई कि "पञ्जाब में हो रही हिंसा को तुरन्त रोका जाए तथा धार्मिक स्थलों से कातिलों को गिरफ्तार किया जाए।"

अन्त में मान्य कुलपति जी ने अध्यक्ष का धन्यवाद करते हुए कहा कि—'हम आपके आदेश की प्रतीक्षा में रहेंगे कि हम शान्ति सेना लेकर आएं ताकि पञ्जाब में राष्ट्रीय चेतना को उजागर किया जा सके और पञ्जाब की शान्ति स्थापना में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपनी उचित भूमिका अदा कर सके।'

सांस्कृतिक-सम्मेलन

१४ अप्रैल रात्रि ७-३० बजे गुरुकुल विद्यालय विभाग के छात्रों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया और अपने कार्यक्रम से सभी श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर दिया। इसका संयोजन डॉ० दीनानाथ मुख्याध्यापक गुरुकुल विभाग ने किया।

यज्ञ की पूर्णाहुति

१५ अप्रैल प्रातः १० बजे यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार द्वारा सम्पन्न कराई गई तथा महात्मा आर्य भिक्षु और आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति ने आध्यात्मिक प्रवचन दिए।

आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार

हिन्दी जगत् के सुविख्यात लेखक, धर्मयुग तथा नवनीत के पूर्व यशस्वी सम्पादक पं० सत्यकाम विद्यालंकार को उनके वेद विषयक कार्य को देखते हुए संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर की ओर से उक्त पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया।

उक्त पुरस्कार आचार्य गोवर्धन जी की जन्मशती के शुभ अवसर पर १९८१ से प्रतिष्ठित किया गया। गत तीन वर्षों में क्रमशः आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार (उप-कुलपति, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय), डॉ० भवानी लाल भारतीय (अध्यक्ष, दयानन्द पीठ पञ्जाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़) तथा पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, देहरादून को इस पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

८६ वर्षीय पं० सत्यकाम जी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित स्नातक हैं तथा गत ४५ वर्षों से साहित्य सेवा में जुटे हैं। आपने सम्पादन के अतिरिक्त ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करके वेद का संदेश विदेशों में पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

संघड विद्या सभा ट्रस्ट की स्थापना मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा के पूज्य पिताश्री स्व० श्री गोवर्धन शास्त्री जी ने १९३० में पञ्जाब में की। विभाजन के बाद यह ट्रस्ट जयपुर में कार्य करने लगा। अभी कुछ दिन पूर्व कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने अपने परिश्रम से अर्जित धन में से ५४ हजार रुपये ट्रस्ट को दान दिए। ट्रस्ट ने इस वर्ष ५४००/ रुपये गोवर्धन ज्योति की तृतीय चतुर्थ और पञ्चम रश्मि के प्रकाशन के लिए आर्यसमाज गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय को प्रदान किए।

विजिटिंग फेलोज का विश्वविद्यालय में आगमन

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना के अन्तर्गत अन्य विश्वविद्यालयों से दर्शन, हिन्दी तथा मनोविज्ञान विभाग में विजिटिंग फैलो के रूप में विद्वानों का आगमन हुआ। इन्होंने विभिन्न विषयों पर अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिये। जिससे विश्वविद्यालय के छात्रों तथा अध्यापकों को अत्यधिक लाभ हुआ। इन विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं:

(i) दर्शन-विभाग—डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, दर्शन विभाग रांची विश्वविद्यालय, बिहार।

(ii) हिन्दी-विभाग—डॉ० विश्वनाथ मिश्र, पूर्व प्राचार्य, सनातन धर्म कॉलेज मुजफ्फरनगर।

(iii) मनोविज्ञान विभाग—डॉ० एच० सी० गांगुली, प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

मानद-उपाधि

इस वर्ष विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती तथा पं० सत्यकाम विद्यालंकार को "विद्यामार्तण्ड" की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

६ फरवरी, १९८४,—को हिन्दी विभाग के तत्त्वावधान में विजिटिंग फेलो डॉ० विश्वनाथ मिश्र, भू० पू० प्राचार्य सनातन धर्म कालेज मुज़फ्फरनगर का 'साहित्य की अपेक्षा' विषय पर सारगर्भित व्याख्यान हुआ। इसका संयोजन डॉ० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग ने किया।

११ फरवरी, १९८४,—को विश्वविद्यालय की सिंडीकेट की बैठक आर्य समाज हनुमान रोड, दिल्ली में सम्पन्न हुई।

१७–२० फरवरी, १९८४,—को मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा तथा डॉ० विजय शंकर अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान ने विज्ञान- भवन में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की 'फर्स्ट कॉनफ्रेंस ऑफ दॉ एशियन फोरम ऑफ पार्लियामेन्ट एटिक्स ऑन पॉपुलेशन एण्ड डवलपमेन्ट' में भाग लिया।

२२ फरवरी, १९८४,—को डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रोफेसर और अध्यक्ष दर्शन विभाग, रांची वि. वि. बिहार का 'आधुनिक भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषताएँ' विषय पर दर्शन विभाग के तत्त्वावधान में विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। इसका संयोजन डॉ० जयदेव वेदालंकार, अध्यक्ष दर्शन विभाग ने किया।

२९ फरवरी, १९८४,—को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय परिसर में 'ऋषिबोधोत्सव का पर्व धूमधाम से मनाया गया। इसमें मुख्य अतिथि पं० सत्यकाम विद्यालंकार रहे। इस अवसर पर विद्यालय के ब्रह्मचारियों ने ऋषि दयानन्द के विषय में अपने संक्षिप्त भाषण दिए तथा डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष इतिहास विभाग, डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष दर्शन विभाग, रांची वि. वि. बिहार, ने स्वामी दयानन्द के जीवन पर प्रकाश डालते हुये उनके द्वारा दिखाये गए मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। अन्त में मुख्य अतिथि पं० सत्यकाम विद्यालंकार तथा कुलपति जी ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि–आज ऋषिके पावन पर्व पर हमें अपने कर्तव्य का बोध होना चाहिए।

८ मार्च, १९८४—को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में वि. वि. के शिक्षक कक्ष में एक सभा का आयोजन हुआ, जिसमें उन्होंने यू० जी० सी० से आने वाली विजिटिंग कमेटी के विषय में अध्यापकों से विचार विमर्श किया और उनका मार्ग प्रदर्शन किया।

९ मार्च, १९८४—को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा भेजी गयी छठी पञ्चवर्षीय योजना के सम्बन्ध में निरीक्षण करने तथा विश्वविद्यालय की प्रगति की अन्य सम्भावनाओं का पता लगाने के

लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी का गुरुकुल में आगमन हुआ।

इस समिति के अध्यक्ष प्रो० रमारंजन मुखर्जी, कुलपति वर्द्धमान विश्वविद्यालय (प० बं०) सदस्य प्रो० आर० सी० गौड, इतिहास विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, प्रो० एम० एल० रैना, पंजाब विश्वविद्यालय तथा सचिव श्री बी० आर० क्वाटरा, उप-सचिव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग थे।

इस समिति ने गुरुकुल कांगड़ी के अध्यापकों, कर्मचारियों तथा विद्यार्थियों से उपयुक्त योजनाओं के विषय में बात की। तत्पश्चात् उन्होंने कन्या गुरुकुल देहरादून का भी निरीक्षण किया। उन्होंने कहा कि गुरुकुल अपनी मौलिक परम्पराओं को उजागर करे। गुरुकुल के अध्यापकगण वेदार्थ के लेखन में तथा प्रकाशन में संलग्न रह कर स्वामी श्रद्धानन्द जी के संकल्पों को पूरा करें तथा गुरुकुल के मिशन को अग्रसर करते हुए देश-विदेश में गुरुकुल की कीर्ति फैलाए।

१५ मार्च, १९८४—को वि० वि० के शिक्षक कक्ष में मनोविज्ञान विभाग के तत्त्वावधान में डॉ० एच० सी० गांगुली, प्रो० तथा अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली का 'चेतना के परिवर्धित स्तर' विषय पर पं० सत्यकाम विद्यालंकार आचार्य गुरुकुल विभाग की अध्यक्षता में एक विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। इसके संयोजक प्रो० ओमप्रकाश मिश्र, अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग रहे।

१६ मार्च, १९८४—प्रातः १० बजे दर्शन विभाग के तत्त्वावधान में डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव प्रो० रांची विश्वविद्यालय का 'पूर्णयोग श्री अरविन्द के संदर्भ में' विषय पर सारगर्भित भाषण हुआ। इसका संयोजन डॉ० जयदेव वेदालंकार ने किया।

१६ मार्च, १९८४—अपराह्न ३ बजे संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर के सौजन्य से 'मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता' का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् 'महात्मा आर्य भिक्षु' ने की। इसी सभा में 'गोवर्धन ज्योति' पुस्तिका का भी विमोचन किया गया।

प्रतियोगिता में प्रथम स्थान गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा द्वितीय स्थान कन्या गुरुकुल कनखल ने प्राप्त किया। दोनों को चलविजयोपहार तथा विशिष्ट पुरस्कार प्रदान किए गए।

अन्त में विशिष्ट वक्ताओं डॉ० जयदेव वेदालंकार, श्री ईश्वर भारद्वाज तथा डॉ० जबरसिंह सेंगर ने अपने संक्षिप्त भाषण में आचार्य गोवर्धन शास्त्री जी के जीवन से शिक्षा लेने का संकल्प दोहराया।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए महात्मा आर्य भिक्षु ने कहा कि आचार्यों का परम कर्तव्य है कि वे बालकों में गुणों की वृद्धि तथा अवगुणों को दूर करने का तन-मन से प्रयास करें।

२२ मार्च, १९८४—को मनोविज्ञान विभाग के तत्त्वावधान में, मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में डॉ० एच० सी० गांगुली प्रोफेसर तथा अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय का 'मानसिक स्वास्थ्य' विषय पर विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। उन्होंने अपने शोधपूर्ण तथ्यों द्वारा मानसिक स्वास्थ्य के कारणों तथा उपायों पर प्रकाश डाला। इसका संयोजन प्रो० ओमप्रकाश मिश्र, अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग ने किया।

२३ मार्च, १९८४—को पं० सत्यकाम विद्यालंकार जी की अध्यक्षता में डॉ० विश्वनाथ मिश्र, भू० पू० प्राचार्य सनातन धर्म कालेज मुजफ्फरनगर का 'महर्षि दयानन्द और हिन्दी साहित्य' विषय पर व्याख्यान हुआ। इसका संयोजन डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश' हिन्दी विभाग ने किया।

२३-२४ मार्च, १९८४—को प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र (उ० प्र० सरकार) गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में जिला स्तर के किसान मेला का आयोजन हुआ। जिसमें डॉ० विजय शंकर, अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान विभाग के निर्देशन में गंगा समन्वित योजना तथा वनस्पति विज्ञान विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण विषयों पर एक प्रदर्शनी लगाई गई जिसका उद्घाटन श्री शैलेन्द्र सागर ने किया। इस प्रदर्शनी को सर्वोत्तम घोषित किया गया। गंगा समन्वित योजना के जूनियर रिसर्च फेलोज तथा अन्य कर्मचारियों ने प्रदर्शनी के आयोजन में सराहनीय कार्य किया।

२४ मार्च, १९८४—को विश्वविद्यालय की कार्य परिषद् की बैठक आर्य समाज हनुमान रोड़ दिल्ली सम्पन्न हुई।

१ अप्रैल से ३ अप्रैल, १९८४—को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन स्टेडीज का १८ वाँ वार्षिक सम्मेलन हुआ। इसकी अध्यक्षता डॉ० भूपेन कानूनगो, प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी तथा संयोजन प्रो० सदाशिव भगत, अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग गु० कां० वि० वि० ने किया। प्रसिद्ध मनीषी डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने इसका उद्घाटन करते हुए कहा कि पूर्व और पश्चिम सदा जुड़े रहेंगे। मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने अपने स्वागत भाषण में विदेशी विद्वानों को अपने देश में भारत का अध्ययन करने के लिए संगठन बनाने की प्रेरणा दी और कहा कि वे पूर्व और पश्चिम को एक दूसरे के समीप लाने का कार्य करें। इस सम्मेलन में देश विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से लगभग १०० विद्वानों ने भाग लिया।

८ अप्रैल, १९८४—को इतिहास-विभाग में श्री एम० के० नारद की मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने "प्रतीहार वंश के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन" विषय पर शोध प्रबन्ध लिखा है।

९ अप्रैल १९८४—को डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार की अध्यक्षता में वि० वि० के शिक्षक कक्ष में एक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें मान्य कुलपति जी ने सभी अध्यापकों से विश्वविद्यालय की प्रगति के लिए एक जुट होकर उत्साहपूर्वक कार्य करने के लिए कहा तथा सभी विभागाध्यक्षों ने मान्य कुलपति तथा परिद्रष्टा महोदय को अपने-अपने विभाग की प्रगति से अवगत कराया।

१० से १५ अप्रैल १९८४—तक विश्वद्यालय के वार्षिकोत्सव के अवसर पर डॉ० जयदेव वेदालंकार के संयोजन में यजुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन हुआ। इसके ब्रह्मा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार अध्यक्ष वेद-विभाग रहे। इसका विस्तृत विवरण दिया जा चुका है।

११ अप्रैल, १९८४—को डॉ० विनोद चन्द्र सिन्हा, अध्यक्ष इतिहास विभाग की अध्यक्षता

में इतिहास विभाग की शोध समिति की बैठक सम्पन्न हुई।

११ अप्रैल, १९८४—को डॉ० एल० पी० पाण्डेय, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, हिमाचल विश्वविद्यालय, शिमला का विश्वविद्यालय में आगमन हुआ तथा उन्होंने संग्रहालय आदि देखा और गुरुकुल की प्रगति की सराहना की।

१२ अप्रैल, १९८४—को सिंडीकेट की विशेष बैठक विश्वविद्यालय के पुस्तकालय भवन में सम्पन्न हुई।

१२ अप्रैल, १९८४— को इतिहास-विभाग में कु० ऊषा भसीन की मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने "उत्तर भारत की शासन-संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया था।

१३ अप्रैल- १९८४—को विश्वविद्यालय की सीनेट की शिष्ट-परिषद् की बैठक पुस्तकालय-भवन में सम्पन्न हुई।

१३ अप्रैल, १९८४—को पुरातत्त्व संग्रहालय परिसर में विद्यालय-विभाग द्वारा एक विशेष प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। जिसका उद्घाटन विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने किया। इस प्रदर्शनी का विशेष आकर्षण पं. सत्यकाम विद्यालंकार, आचार्य गुरुकुल विभाग द्वारा बनाये वैदिक मन्त्रों के भाव-चित्र थे। श्री अग्रवाल (वी० एच० ई० एल०) के सहयोग से संग्रहालय की ओर से सिक्कों का भी विशेष कक्ष लगाया गया।

१३ अप्रैल, १९८४—को डॉ० सिन्हा, कुलपति हिमाचल विश्वविद्यालय तथा डॉ० आराम कुलपति गांधी ग्राम रुरल इंस्टीट्यूट मदुराई का विश्वविद्यालय में आगमन हुआ।

१४ अप्रैल से १६ अप्रैल १९८०—को डॉ० त्रिलोक चन्द्र, दर्शन विभाग (संयोजक प्रौढ़ शिक्षा) ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा सारनाथ में आयोजित अखिल भारतीय सामुदायिक शिक्षा सम्मेलन में भाग लिया और सामुदायिक शिक्षा पर अपना पत्र पढ़ा। वहाँ उन्हें श्री एम० एल० मेहता उपसचिव ने बताया कि गुरुकुल कांगड़ी को प्रौढ़ शिक्षा के ३० केन्द्र और दिए गये हैं। इस प्रकार गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में अब साठ केन्द्र हो गये हैं।

१६ अप्रैल, १९८४—से विज्ञान महाविद्यालय की परीक्षाएं डॉ० बी० डी० जोशी (परीक्षाध्यक्ष) तथा डॉ० टी० आर० सेठ एवं श्री एच० सी० ग्रोवर (सहायक परीक्षाध्यक्ष) के कुशल निर्देशन में शान्त एवं सुव्यवस्थित वातावरण में प्रारम्भ हुईं।

२६ अप्रैल, १९८४—सेकला महाविद्यालय एवं वेद महाविद्यालय की परीक्षाए प्रो० ओ० पी० मिश्र (परीक्षाध्यक्ष) तथा डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा, डॉ० जयदेव वेदालंकार तथा काश्मीर सिंह भिण्डर (सहायक परीक्षाध्यक्ष) के कुशल निर्देशन में विश्वविद्यालय भवन में वैदिक मन्त्रोच्चारण के साथ प्रारम्भ हुईं।

प्रस्तुतकर्ता—राकेश शास्त्री □

पुस्तकालय की मेज से—

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में वर्ष १९८३ में आयी नई पुस्तकें :—

वैदिक साहित्य

१ वीरेन्द्र कुमार वर्मा "ऋग्वेद प्रतिशाख्यम्"— काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी
२ दैवरात "वेदार्थ कल्पलता" — ,, ,, ,,
३ रामनाथ दीक्षित "उह गानम् ऊहगानम" — ,, ,, ,,
४ हरिशंकर जोशी "वैदिक विश्वदर्शन" — ,, ,, ,,
५ वीरेन्द्र कुमार वर्मा 'ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्"— ,, ,, ,,
६ सूर्यकान्त "वैदिक कोश" — ,, ,, ,,
७ श्री नारायण शंकरानन्द "उपनिषद् समुच्चय"— ,, ,, ,,
८ डॉ० एस कुजूर "वैदिक एव धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी"— वाराणसी वि. वि. प्रकाशन
९ रंगनाथ "उपनिषदों की वाणी"— मीनाक्षी प्रकाशन
१० सत्यप्रकाश शास्त्री "ऋग्वेद संहिता" (अंग्रेजी अनुवाद) वेद प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
११ गया चरण त्रिपाठी "वैदिक देवता उद्भव और विकास" दिल्ली भारतीय विद्या प्रकाशन
१२ बद्रीप्रसाद पंचोली "ऋग्वेद में गोतत्त्व" अजमेर, अर्चना प्रकाशन
१३ दमोदर सातवलेकर "अथर्ववेद का प्रबोध भाष्य" स्वाध्याय मण्डल
१४ दामोदर सातवलेकर '.ऋग्वेद का सुबोध भाष्य— स्वाध्यायमण्डल, पारडी
१५ दामोदर सातवलेकर "वेद का स्वयं शिक्षक" — ,, ,,
१६ दामोदर सातवलेकर "वैदिक व्याख्यान माला" ,, ,,
१७ हरिदत्त शास्त्री, कृष्ण कुमार "ऋक् सूक्त संग्रह"— साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ
१८ राजेन्द्र कुमार त्रिवेदी "उपनिषद् कालीन समाज एवं संस्कृति"— दिल्ली, परिमल पब्लिकेशन
१९ शर्मा उमाशंकर 'ऋषि' 'हरिश्चन्द्रोपाख्यानम्'— वाराणसी, चौखम्बा भवन
२० आचार्य प्रियव्रत "वैदिक राजनीति में राज्य की भूमिका"— मीनाक्षी प्रकाशन
२१ हेमलता सिंह "ऋग्वेद के अग्नि सूक्तों की उपमाओं का अध्ययन,,— अनुपम प्रकाशन
२२ योगेन्द्र पुरुषार्थी "वेदों में योग-विद्या,,— यौगिक शोध संस्थान (योगधाम)ज्वालापुर
२३ "सामवेद संहिता"— आर्ष कन्या गुरुकुल, नरेला
२४ डॉ० निगम शर्मा "ऋक्त् सूक्त मंजरी"— बरेली स्टूडेन्ट स्टोर। (क्रमशः)

प्रस्तुतकर्ता—जगदीश विद्यालङ्कार